वादे वादे जायते तत्त्वबोधः ।

यद्यपि आजकल कुछ विद्वानोंकी सम्मतिमें शास्त्रार्थकी पद्धति पदार्थनिर्णायक नहीं समझी जाती है, और ऐसी उनकी सम्मति बहुत अंशोंमें यथार्थ भी प्रतीत होती है, अन्यथा अकाट्य युक्तियोंके पक्षमें शास्त्रार्थका परिणाम अवश्य ही परपक्ष ग्रहणके लिये होता, तथापि हमारी सम्मतिमें शास्त्रार्थका परिणाम अवश्य ही विशेष फलप्रद है। चाहे वह वादीपक्षमें पक्षपातवश भले ही स्वीकृत न हो परन्तु निष्पक्ष विद्वानोंके हृदयमें अकाट्य युक्तिवाद और हेतुवाद अवश्य ही सन्तोषप्रद सम्मान पाता है, और विद्वानोंको जिसमें सन्तोष हो उसे ही हम सफलताका द्वार समझते हैं।

आर्यसमाजके विद्वानोंने बहुत वर्षोंसे जैनियोंके साथ फीरोजाबाद, खुर्जा, मुल्तान, अम्बाला, जैजों, अजमेर आदि स्थानोंमें जो शास्त्रार्थ किया है और उससे जो जैनसिद्धान्तका प्रचार हुआ है तथा लोगोंने यथार्थ वस्तुबोध प्राप्त किया है उन सबका श्रेय भी यदि आर्य समाजको दिया जाय तो अत्युक्त न होगा। यदि आर्यसमाजके विद्वान् शास्त्रार्थके लिये उद्यत न होते तो संभव था कि जैनसिद्धान्तको पक्षपाती लोगोंमें भी विशेष आदरणीय होनेका इतना महत्व प्राप्त न होता।

पाठक न भूले होंगे कि गत २ वर्ष पहले अजमेरमें जैनियोंका आर्यसमाजके साथ मौखिक तथा लिखित शास्त्रार्थ हो चुका है इस वर्ष भी नजीबाबाद और जैजोंमें उक्त दोनों पक्षोंके विद्वानों द्वारा शास्त्रार्थ किया जा चुका है। उक्त शास्त्र-

छप चुके हैं, इनके विषयमें विद्वानोंका अभिमत है कि जैनियोंका ही पक्ष विजयपक्ष रहा है। प्रसिद्ध पत्र सरस्वती सम्पादक पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी भी उक्त शास्त्रार्थोंकी समालोचना करते समय जैनियोंके पक्षको युक्तियुक्त तथा प्रबल बतला चुके हैं। फिर भी आर्य समाजके विद्वानोंका अति साहस है कि वे दिये हुए दोषोंका निराकरण किये बिना ही बार२ उसी विषयमें शास्त्रार्थके लिये तयार हो जाते हैं, अस्तु, हम तो उनका आभार ही मानते हैं। और " वादे वादे जायते तत्त्वबोधः " इस नीतिके अनुसार विद्वानोंसे इस शास्त्रार्थपर सूक्ष्म दृष्टि डालनेके लिये प्रार्थना करते हैं।

शास्त्रार्थका पूर्व रंग।

ता० ११ जुलाईको आर्यसमाजके विद्वान् पं० नृसिंहदेवजी कवितार्किक दर्शनाचार्य प्रॉफेसर डी० ए० बी० कालिज लाहौर दिल्ली आये थे। वहां उन्होंने व्याख्यान देते हुए जैनधर्मके विषयमें अनेक मिथ्या बातें कहीं। उसी समय श्रोतृमंडलमें बैठे हुए जैनमित्र मंडलके कुछ सदस्योंमेंसे एक सदस्यने उक्त पंडितजीसे शांतिपूर्वक कहा कि पंडितजी! आप जैन सिद्धान्तका खंडन करें इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है। हम भी यही देखना चाहते हैं कि आपने जैन सिद्धान्तको यहां तक समझा है और आपकी युक्तियां जैन सिद्धांतकी युक्तियोंके सामने कहां तक टक्कर ले सकेंगी परन्तु वैसा न करके आप व्यर्थकी मिथ्या बातोंमें अपना और श्रोतृगणोंका समय नष्ट कर रहे हैं, यह बात विद्वत्प्रशंसनीय नहीं है। इस

शांतिपूर्वक वक्तव्यके उत्तरमें उक्त पंडितजी शास्त्रार्थके लिये फिर भी (जैनोंमें जैन विद्वान् पं० बनारसीदासजीसे निरुत्तर होनेपर भी) उद्यत होने लगे। जैनमित्र मंडलके सदस्योंको पहले शास्त्रार्थके परिणामसे उनकी ऐसी तैय्यारीपर कुछ उपेक्षा भी हुई। तथापि जोशीले जैनमित्रमंडलके नवयुवक शास्त्रार्थके नियम और निश्चित तिथिके लिये उन्हें बाध्य करने लगे। यद्यपि आर्यसमाजके विद्वान् शास्त्रार्थके लिये किसी प्रकार तैय्यार न थे तथापि अपने शब्दोंसे बाध्य होकर उन्हें शास्त्रार्थकी स्वीकृति देनी ही पड़ी।

परन्तु स्वीकारताके गर्भमें भी अस्वीकारता भरी हुई थी जिसका परिणाम यह हुआ कि जैन मित्रमंडल और आर्यकुमार सभा देहलीके मंत्रियोंद्वारा जो शास्त्रार्थके नियम निश्चित किये गये थे, उनमें आर्यकुमार सभाकी तरफसे ऐसी २ शर्तें रक्खी गईं थीं जो कि शास्त्रार्थकी दृष्टिसे परपक्षको सर्वथा स्वीकृत होने योग्य न थीं। उन शर्तोंपर दृष्टि डालनेसे विद्वानोंको यह बात स्पष्ट जँच जाती है कि आर्य कुमार सभा अपने वचनकी रक्षा करती हुई शास्त्रार्थसे सर्वथा हटना चाहती है, हम उन दोनों ओरके पत्रोंके प्रकाशित कर पाठकोंका समय केवल शास्त्रार्थके पूर्व रंगमें ही व्यतीत करना नहीं चाहते हैं किन्तु प्रकृत मुख्य विषय शास्त्रार्थ विषयक दोनों ओरके विद्वानों द्वारा दी हुई युक्तियोंपर विचार करनेके लिये निवेदन करते हैं।

उभय पक्षसे निश्चित किए हुए नियमोंमेंसे कुछ नियम इस प्रकार हैं:—

१—ईश्वर सृष्टिका कर्ता है या नहीं ?

तीर्थंकर सर्वज्ञ हो सक्ते है या नहीं ?

इन्हीं दो विषयोंपर शास्त्रार्थ होगा।

२—पहिले विषयका प्रश्न जैन मित्रमण्डलकी ओरसे और उत्तर आर्य कुमार सभाकी ओरसे होगा, दूसरे विषयका प्रश्न आर्यकुमार सभाकी ओरसे और उत्तर जैन मित्रण्डलकी ओरसे होगा तथा उत्तरदाताकी अन्तिम वारी रहेगी।

३—हरएक विषयका शास्त्रार्थ कमसे कम ३ दिन अवश्य चलेगा और प्रतिदिन रात्रिके ८ बजेसे ११ बजे तक ३ घन्टे शास्त्रार्थ होगा।

४—शास्त्रार्थ लिखित ही होगा और जो लिखा जाय वही पढ़कर पब्लिक (उपस्थित श्रोतृमण्डल)को सुनाया जाय।

५—शास्त्रार्थका प्रारम्भ २१ जुलाई सन् १९१७से होगा, यदि किसीको तारीख बदलनी हो तो शास्त्रार्थकी निश्चित तारीखसे तीन दिन पहिले सूचना देवे अन्यथा दूसरे पक्षका हर्जाना देना पड़ेगा।

६—सभापति उभय पक्षका एक ही होगा और वह आर्य-समाजी ही होगा।

७—स्थान आर्यसमाजका मन्दिर ही होगा।

८—प्रबन्ध आर्यसमाजकी तरफसे ही होगा।

पाठको ! चौथे नियमके अनुसार लिखित शास्त्रार्थ इसी-लिये रक्खा गया था कि कोई पक्ष अपने वचनको अन्यथा (बदल) न कर सकें परन्तु सभापति महोदयने शास्त्रार्थके प्रथम दिवस उप-युक्त निश्चित नियमका भंग कर मौखिक वक्तव्य रखनेके लिये

विशेष अनुरोध किया, जब एक नियम "शास्त्रार्थका अक्षर प्रत्यक्षर ठीक २ लोगों तक पहुंच जाय उसमें किसी प्रकारकी फेरफार न हो इस उद्देश्यसे उभयपक्षसे मान्य हो चुका था फिर क्या कारण था कि निश्चित नियमको तोड़ाजाय। परन्तु ये सब बातें शास्त्रार्थको टालनेकी थीं।

जैन मित्रमण्डल इस बातको समझ गया और उसने उनके इस आग्रहको भी स्वीकार किया अर्थात् चौथा नियम इस रूपमें तय हुआ कि दोनोंतरफसे १० मिनिट लिखाजाय और ५ मिनिटमें सुनाया जाय, तथा मौखिक लोगोंको समझाया जाय। पूर्व नियमके अनुसार शास्त्रार्थ यद्यपि २१ जुलाईसे होना चाहिये था परन्तु आवश्यकीय कार्यवश विद्वानोंके तार आजानेसे इसी ५ वें नियमके अन्तर्गत नियमके अनुसार शास्त्रार्थकी तारीख उभयपक्षसे २५ जुलाईसे ३० जुलाई तक रक्खी गई।

६ ठा नियम यद्यपि शास्त्रार्थकी दृष्टिसे ठीक नहीं है। उत्तम तो यह था कि कोई उभयपक्षसे भिन्न तीसरा ही निष्पक्ष विद्वान सभापति बनाया जाता अथवा जैसे आर्यसमाजी सभापति बनानेका आग्रह आर्य समाजको था वैसे दूसरे पक्षसे भी होना स्वाभाविक था अथवा इसप्रकारके आग्रहमें दोनों ओरसे दो सभाध्यक्षोंका होना आवश्यक था। परन्तु आर्यसमाजका यह आग्रह कि सभापति एक ही हो और वह आर्यसमाजी ही हो, विदित कराता है कि आर्य समाज ऐसी २ असंगत बातोंसे शास्त्रार्थको टालना चाहती है परन्तु जैनियोंको शास्त्रार्थ कर तत्त्वनिर्णय करना अभीष्ट था इसलिये आर्यसमाजके इस आग्रहको भी सहर्ष स्वीकार कर लिया।

परन्तु खेद इतना है कि जिस दृष्टिसे आर्यसमाजके महोदय उभय-पक्षसे सभापति ठहराये गये थे उस दृष्टिसे उन्होंने कार्य नहीं किया। निषेध करनेपर भी उन्होंने अपनी बैठक अपने वक्ताके पास ही रक्खी, दूसरे वे सभापति होनेपर भी बहुतसी बातोंका उत्तर स्वयं आर्यसमाजकी हैसियतसे देते थे इतना ही नहीं किन्तु उनका गहरा पक्षपात बैठी हुई पब्लिकको भी खटकता था अस्तु इन कतिपय त्रुटियोंके सिवा बाकी सब तरह शान्ति रही, और छहों दिन उपर्युक्त दोनों विषयोंपर सानन्द शास्त्रार्थ समाप्त हुआ। दोनों तरफके विद्वान् लिखते समय कागज़के नीचे मलट लगाते थे। इसलिये १ पत्रपर लिखनेसे दो कापियां हो जाती थीं।

इस प्रबन्धसे एक अक्षर भी वढाने घटानेका किसीको अवकाश नहीं रहसक्ता है। दोनों पक्षोंका लिखित शास्त्रार्थ ज्योंका त्यों पाठकोंके समक्ष है। शास्त्रार्थके समय जो ४००० चारहजार जनता इकट्ठी होतीथी उसने तो शास्त्रार्थका परिणाम निकाला ही होगा, पाठकगण भी हमारे विशेष अनुरोधसे इस शास्त्रार्थपर पूर्ण विचार करेंगे। और दोनों तरफके विद्वानोंकी युक्तियोंपर सूक्ष्म दृष्टि डालकर निर्णय करेंगे ऐसी प्रार्थना है।

शास्त्रार्थके मध्यकी कुछ बातें।

ता० २८ को हमारी तरफसे एक पत्र सभापति महोदयके पास भेजा गया था कि किसी असभ्य शब्दका प्रयोग न किया जाय अन्यथा पब्लिकका भड़क जाना संभव है। तथापि ता० २९ को पंडित नृसिंहदेवजी शास्त्रीने तीर्थंकरके विषयमें ऐसे वचन कहे जिससे कि जैनसमाजका बहुत खेद हुआ।

और उसी समय एक पत्र हमारी तरफसे सभापति साहेब-के पास भेजा गया जिसके उत्तरमें उन्होंने पत्रद्वारा अपने शब्दोंको वापिस लेते हुए आगे असभ्य शब्द न बोलनेकी प्रतिज्ञा की। तथा मिष्ट शब्दोंमें क्षमा प्रार्थना कर शिष्टताका व्यवहार किया।

शास्त्रार्थके अन्तमें शास्त्रार्थ।

ता० ३०को अन्तिम समय (शास्त्रार्थके समाप्त हो जानेपर) पं० नृसिंहदेव शास्त्रीने अपनेको पब्लिककी दृष्टिमें गिरा हुआ समझकर शाब्दिक पाण्डित्य प्रगट करनेके लिये निवेदन किया कि संस्कृत भाषामें १० पंक्तियां मैं लिखता हूं और १० पंक्तियां आप लिखिये और दोनोंको काशी आदिके विद्वानोंके पास भेजकर उनका निर्णय कराना चाहिये इसपर हमारी तरफसे सहर्ष स्वीकारता होनेपर आपने समवायके विषयपर कुछ पंक्तियां लिखकर दीं, इसी प्रकार हमारी तरफसे भी दी गईं।

पं० नृसिंहदेवजीने ये पंक्तियां लिखीं—जैनानां मते समवायसम्बन्धस्य खण्डनं कथञ्चित्तादात्म्यसम्बन्धस्वीकारेति मया तदभिमतग्रन्थेषु प्रदर्शयितुं शक्यते। **नृसिंहदेव-शास्त्री**
दर्शनाचार्यः

हमारे शास्त्रीजीने ये पंक्तियां लिखीं—

आर्हतानां दर्शने गौतमीय नित्यैकरूपस्यसमवाय पदार्थस्य प्रतिविधानं कथञ्चित्तादात्म्यरूपस्य समवायस्यानेकस्य स्वीकृतिश्च समर्थ्यतेऽस्माभिरार्हतैः। **मक्खनलाल शास्त्री**
न्यायालङ्कारः

पाठको ! पं. नृसिंहदेवजीका कहना था कि जैनाचार्य समवाय सम्बन्ध नहीं मानते हैं, हमारे शास्त्रीजीका कहना था कि जैनाचार्य निरन्यैकान्त समवायका खण्डन करते हैं परन्तु कथञ्चि-त्तादात्म्य अनेकरूप समवाय सम्बन्धका मण्डन करते हैं इस विषयमें जो पंक्तियां प्रमेयकमलमार्तण्ड और प्रमेय रत्नमालाकी पं. नृसिंहदेवजीने पढ़ कर सुनाई तो मालूम हुआ कि वे बिचारे इन पंक्तियोंको समझे ही नहीं है, फिर हमारे शास्त्रीजीने उन पक्तियोंका अर्थ स्पष्ट कर दिया, और पंडित नृसिंहदेवजीकी भूलको भलीभाति प्रकट करदिया इस पर भी जब उक्त पण्डितजी हट करने लगे तब तो हमारे शास्त्रीजीने बड़े जोरसे ये शब्द कहे कि " यदि पं. नृसिंहदेवजी उक्त पंक्तियोंको लगादें तो यह सम्वाद अभी समाप्त हो जाय। साथ ही शास्त्रीजीने उपस्थित श्रोतृमण्डलसे कहा कि आप लोगोंमें जो संस्कृतज्ञ विद्वान् हों वे कृपाकर इन पंक्तियोंका आशय प्रगट करदें, हमें उनका कथन सर्वथा स्वीकृत होगा, अन्यथा ये पक्तियां काशी ही भेजकर निर्णय कराई जाय। शास्त्रीजीके इस वक्तव्यसे समग्र जनता समझ गई कि पं० नृसिंह-देवजी पंक्तियोंको समझे नहीं हैं और कोरा हट करते है।

पं० नृसिंहदेवजी तो हमारे शास्त्रीजीके ऐसे प्रभावमें आ गये कि प्रमेयरत्नमालाकी इसवार्तिक (अत्र समवायस्य धर्मिणः कथ-ञ्चित्तादात्म्यरूपस्याऽनेकस्य च परैः प्रतिपन्नत्वात् मुद्रित पुस्तक पृष्ठ १०४ पंक्ति ९) को देखकर सर्वथा निरुत्तर हो गये और तुरन्त ही अपनी भूलको समझ कर जिन पंक्तियोंको काशीके विद्वानोंके पास भेजना चाहते थे उनको न भेजनेकी समापति महो-

दयसे प्रार्थना करने लगे। ठीक ही है भेजते तो वे क्या भेजते ? पाठकगण देख लें कि हमारे शास्त्रीजीने तादात्म्य-अनेक रूप समवायकी जैन सिद्धान्तानुसार स्वीकारता ऊपरकी जिन संस्कृत पंक्तियोंमें लिखी है वह प्रमेय रत्नमालाकी वार्तिकसे सर्वथा मिलती है। अन्तमें हमारे शास्त्रीजीने पं० नृसिंहदेवजीसे फिर भी कहा कि मित्र महोदय पं० नृसिंहदेवजी ! यदि आपको इस विषयमें कुछ और भी कहना हो तो खुशीसे कहिये मैं उत्तर देनेके लिये तयार हूं। इसपर पं० नृसिंहदेवजी तो कुछ नहीं बोले किन्तु उनकी तरफसे सभापति बाबू रामचन्द्रजीने कहा कि समवाय सम्बन्धके विषयमें जो जैन पण्डितजीने ग्रन्थ प्रमाणसे कहा है वह हमारे पण्डितजीको स्वीकार है और अब वे कुछ कहना भी नहीं चाहते हैं। इस प्रकार शास्त्रार्थसे अतिरिक्त पाण्डित्य प्रगट करनेके लिये समवायका झगड़ा उठाकर पं० नृसिंहदेवजी स्वयं दोनों ओरसे हास्यास्पद बने। साथ ही समाजको भी उपस्थित जनताकी दृष्टिमें हास्य भाजन बनाकर छोड़ा। ऐसी उदासीनतामें सभापति साहब उपस्थित सज्जनोंको धन्यवाद देना भी भूल गये; अन्तमें जब देखा कि अब समाजमें बिलकुल सन्नाटा ही छा गया है तब हमारी ओरसे श्रीमान् साहु जुगमंदिरदासजी (आनरेरी मजिस्ट्रेट व रईस नजीबाबाद) ने उपस्थित जनताका आभार मानते हुए राजराजेश्वर पञ्चम जार्ज महोदय आदिको धन्यवाद दिया। उसी समय जैन मित्रमंडल भी आर्य मंदिरसे सोल्लास सहर्ष विदा हुआ। जैनमित्रमंडल

पत्रव्यवहार—

(हमारी ओरसे)

* जैन तत्त्वादर्श ग्रन्थ आत्मारामजीकृत तथा आनन्दरामजीकृत जो ग्रन्थ हैं वे दिगम्बराम्नाय ऋषि प्रणीत नहीं हैं इसलिये हम लोगोंको मान्य नहीं, क्योंकि शास्त्रार्थ दिगम्बर विद्वानोंसे हो रहा है।

हमारे दूसरे पत्रोंका कुछ अंश।

श्वेताम्बर ग्रन्थोंके आधारपर जो अपशब्द आप कह गये हैं वे भी श्वेताम्बर सम्प्रदायद्वारा खण्डनीय हैं और वे उसका उत्तर देनेको तैयार भी हैं।

पं० नृसिंहदेवजी तीर्थंकरोंके बारेमें असभ्य शब्दोंका प्रयोग करते हैं उन्हें आप (सभापति महोदय) केवल विषय प्रतिपादन करनेकी आज्ञा दीजिये। क्योंकि आपका पदस्थ उभयत्र शान्तिके लिये है।

---

* ता. २९ को प० नृसिंहदेवजीने सर्वज्ञ सिद्धिका विषय छोड़कर श्वेताम्बर ग्रन्थके आधारसे श्रीऋषभदेवजीके वैवाहिक सम्बन्धको बतलाते हुए उनके विषयमें सर्वथा मिथ्या अपशब्द कहे थे उन मिथ्या अपशब्दोंको नहीं सहनकर जैन मित्रमण्डलकी ओरसे उसी समय ये पत्र दिये गये हैं।

पत्रव्यवहार

(आर्यसमाजियोंकी ओरसे)

Ary Kumar Sabha

* चूंकि आपने दिगम्बर जैन होनेके कारण हमारी तरफसे जैन तत्त्वादर्शमेंसे प्रमाण दिये हुओंको अप्रमाणिक कहा है, इस कारण हमने जो २ प्रमाण उक्त ग्रन्थमेंसे दिये हैं वे अप्रमाणिक समझिये और आयंदा ऐसी गलती न हो। आप कृपा करके अपने माननीय मुख्य ग्रन्थोंकी जो छपे हुए हैं सूची भेज दें बड़ी कृपा होगी।

Dated 29-7-17. Ramchandra

---

* हमारे पत्रके उत्तरमें सभापति बा. रामचंद्रजीने इस पत्रद्वारा पं० नृसिंहदेवजीके कथनको अप्रमाण बतलाते हुए तथा आयंदा ऐसी गलती न-करनेकी प्रतिज्ञा करते हुए दिगम्बर जैन ग्रन्थोंकी सूची मांगी है।

जैन मित्रमण्डल।

वन्दे जिनवरम्

शास्त्रार्थ देहली

(ईश्वर कर्तृत्व विषयक)

जैन मित्रमण्डलका प्रथम प्रश्न पत्र।

सम्पूर्ण पदार्थोंके साथ बुद्धिमान् कर्त्ताकी व्याप्ति नहीं है क्योंकि मेघ विद्युतादिक बिना बुद्धिमान कर्ताके भी उत्पन्न होते दीखते हैं। इसलिये आपका कार्य्यत्व हेतु भागासिद्ध है; यदि आप कार्य्यत्वका अर्थ सावयव करते हैं तो सावयवके अधिकसे अधिक चार अर्थ हो सकते हैं—अवयववृत्ति, अवयवोंसे बना हुआ, विकारीपना, प्रदेशीपना। यदि अवयव वृत्ति सावयवका अर्थ किया जाय तो अवयव सामान्यसे अनैकान्तिक हेत्वाभास होगा, यदि सावयवका अर्थ अवयवोंसे बना हुआ किया जाय तो साध्यसम-हेत्वाभास होता है, प्रदेशीपना अर्थ करनेमें आकाशमें अनैकान्तिक हेत्वाभास होता है, और यदि विकारीपन अर्थ किया जाय तो ईश्वरके साथ ही अनैकान्तिक दोष आता है क्योंकि विकारीपन और कर्त्ताकी व्याप्ति है इस प्रकार कार्यत्व हेतु असिद्ध है। दूसरे कार्य्यत्व हेतुमें जो कुम्भकारादि दृष्टान्त हैं वह साध्य विकल है क्यों कि आपका साध्य अशरीर सर्वज्ञ कर्त्ता है और कुलाल शरीर अल्पज्ञ है। इसलिये कार्य्यत्व हेतु सशरीर अल्पज्ञ कर्त्ताको ही सिद्ध करता है इसलिये आपका कार्य्यत्व हेतु विरुद्ध हेत्वाभास है।

इच्छा रहित होनेसे ईश्वर सृष्टि कर्त्ता नहीं होसकता है, क्योंकि विना कर्ममलके इच्छा होती नहीं। ईश्वर कर्ममल रहित है इसलिये उसकी इच्छा नहीं होसकती है। और इच्छाके विना वह मुक्तात्माके तरह कार्य्य भी नहीं कर सकता है इस प्रकार चारों हेत्वाभास ग्रसित होनेसे आपका कार्यत्व हेतु ईश्वरमें कर्तृता सिद्ध नहीं कर सकता है।

आर्यकुमार सभाका प्रथम उत्तर पत्र।

जो कार्य्य होता है वह अवश्य ही बुद्धिमान कर्त्तासे जन्य होता है जैसे कि घटपटादि कार्य्य हैं, कार्य्यत्व हेतु भागासिद्ध इस लिये नहीं कि यावत् अन्य पदार्थोंमें पाया जाता है, कार्य्यत्वका अर्थ प्रागभाव प्रतियोगित्व मानते हैं इस लिये शेष सब आपके दोष खण्डित हो गये, विकारीपन तथा कर्त्ताकी व्याप्ति सिद्ध नहीं होती किन्तु कार्य्यत्वकी कर्त्तासे व्याप्ति हैं कर्त्ता कोई विकारी ही अथवा अविकारी हो इससे उक्त हेतु असिद्ध नहीं हो सक्ता, जन्यत्वके साथ शरीरपनका विशेषण असमर्थ है इस लिये विरुद्ध नहीं जैसे इच्छा रहित आपके वीतराग तीर्थङ्कर भी उपदेशके प्रति कर्त्ता हैं वैसे ईश्वर भी, परन्तु हमारे ईश्वरकी इच्छा स्वाभाविक तथा शुद्ध है मलिन नहीं, इस लिये उक्त दोष नहीं। सब हेत्वाभासोंका उत्तर हो चुकनेसे कार्य्यत्व यथार्थहेतु है, हेत्वाभास नहीं।

जैन मित्रमण्डलका द्वितीय प्रश्न पत्र।

दृष्टान्त उसीका दिया जाता है जिसमें साध्य अंश हो। कुम्भकारमें साध्य अंश नहीं है, प्रत्युत विरुद्ध साध्य होनेसे विरुद्ध हेत्वाभास नामका दोष तद्वस्थ है, कार्य्यत्व हेतु घासादि वनस्पतियोंमें

नहीं जाता है इस लिये भागासिद्ध दोष तद्वस्थ है। जो कर्ता होता है वह विकारी होता ही है क्योंकि सद्वस्तुका अन्यथा होना ही विकार है, ईश्वर जीव भिन्न २ कार्य्योंको करता है तो विकारी अवश्य है। तीर्थंकरको हम विकारी स्वीकार करते हैं, स्वाभाविक दशामें उपदेश नहीं देते किन्तु उपदेश देते समय वे शरीर सहित हैं इस लिये असिद्ध दोष बराबर तद्वस्थ है। उसकी निर्मल यदि इच्छा है तो वह दरिद्र व रोगी जीवोंको क्यों पैदा करता है? यदि उसकी इच्छा नित्य है तो एकसे कार्य्य होना चाहिये। यदि उसकी इच्छा नित्य है, तो एकसे कार्य्य होना चाहिये। यदि भिन्न २ इच्छा मानोगे तो एक समयमें हो नहीं सकती और एक एक इच्छासे नाना कार्य्य हो नहीं सकते और दुनियांमें नाना कार्य्य देखे जाते हैं प्रत्यक्ष व अनुमान बाधित हेत्वाभास तद्वस्थ रहा।

आर्य्य कुमार सभाका द्वितीय उत्तर पत्र—

घटपटादि दृष्टान्तोंमें कार्य्यत्व तथा कर्तृजन्यत्व दोनोंकी व्याप्ति पाये जानेसे दृष्टान्तसिद्धि नहीं, तृण घासादि वनस्पतियोंमें कार्य्यत्व स्पष्ट २ स्वीकृत है इसलिये भागासिद्ध नहीं क्योंकि उन्हींमें कार्य्यत्वसे कर्तृजन्यत्वकी सिद्धि अनुमान प्रमाण सिद्ध है अतः ईश्वरकी सिद्धिको निष्प्रमाण कथन करना नहीं बन सकता, कर्ता विकारी ही होता है इसका उत्तर आ चुका है जो प्रत्यक्ष हो वही होता है तो तुमने अपने पिता तथा तीर्थंकरोंको पैदा होते क्या देखा है? और देखा होना बन नहीं सकता इससे क्या आपके पिता तथा तीर्थंकरोंको न माना जाय? प्रत्यक्ष योग्यमें प्रत्यक्षकी बाधा हो सकती है, न्यायकी शैलीका भी ध्यान करो अन्यथा सब

सिद्धान्त आपका खण्डित हो जायगा। आपके तीर्थंकर विकारी होनेसे सदुपदेश करनेके योग्य नहीं। रथ्या पुरुषकी भांति ज्ञान लो सर्व शक्तिमानमें इच्छाओंका दोष नहीं लग सकता कर्मानुसार फल देनेसे दुःखी आदिका दोष नहीं, मेरे समाधान ठीक होने पर भी आपने मेरे दिये दोषोंका परिहार नहीं किया। घड़ी टक २ किसी चेतनके नियमसे करती है वैसे ही पृथिव्यादिक भी बुद्धिमान् चेतन कर्ता सापेक्ष ही सिद्ध हो गये।

जैन मित्रमण्डलका तृतीय प्रश्नपत्र।

घासादिकोंमें कार्य्यत्वका निषेध कहा करते हैं किन्तु कार्यकी कारणके साथ व्याप्ति है नकि सर्वज्ञ कर्ताकी, इस लिये भागासिद्ध दोष बराबर चला जाता है। यदि घासादिकमें ईश्वर है तो किस प्रमाणसे ? खेद है आपने घासादिकमें कार्य्यत्व सिद्ध करते हुए भागासिद्ध दोषको ही नहीं समझा। क्योंकि कार्य्यत्वका हम निषेध नहीं करते किन्तु सर्वज्ञ कर्त्ताका, दूसरे परोक्षपदार्थोंका भी हम निषेध नहीं करते हैं, पिता पुत्रका सम्बन्ध अनादि प्रत्यक्ष सिद्ध है, उसमें कोई बाधक प्रमाण नहीं है किन्तु घासादिमें आपका ईश्वर कुछ भी कार्य नहीं करता दीखता है इसलिये उसे सप्रमाण सिद्ध करिये जो विकारित्व ईश्वरमें बताया गया था उसका कोई उत्तर नहीं। जब कर्मानुसार ही आपके कथनानुसार फल होता है तो ईश्वर बीचमें क्या करता है। यदि ईश्वरका कार्य परोक्ष दृष्टिसे बिना किसी प्रमाणके मान लिया जाय तो हरेक पदार्थको ही परोक्ष कारण मान सकते हैं, यदि कुम्हारको दृष्टांत मानकर सबका कर्ता ईश्वर मान लिया जावे तो बैलके सींगको देख आर्य मनुष्योंके भी

सींग मान लेना चाहिये, अभीतक नाना इच्छा और एक इच्छाका कुछ भी उत्तर नहीं हुआ है, ईश्वरकी इच्छा क्यों पैदा होती है इसका भी कुछ उत्तर नहीं हुआ। सर्व शक्तिमान ईश्वर हैं तो बुरे कार्य क्यों होते हैं?

आर्यकुमार सभाका तृतीय उत्तरपत्र।

घासादिकमें कार्यत्व स्वीकारसे बुद्धिमतकर्तृजन्यत्व सिद्ध किया गया। कार्यकी बुद्धिमत्कर्त्ताके साथ व्याप्ति सिद्ध कर चुका हूं। आपने कोई ऐसा दृष्टांत नहीं दिया जो विना बुद्धिमान् कर्त्तासे जन्य हो। घासादिमें ईश्वर अनुमान सिद्ध है, परोक्षका निषेध नहीं करते तो परोक्ष ईश्वर भी आपने मान लिया। पिता पुत्रका सम्बन्ध अनादि प्रत्यक्ष सिद्ध जैसे वैसे ईश्वरका जगत् उत्पन्न करनेमें भी सम्बन्ध जानें। घासादिमें ईश्वर नियन्ता होनेसे निषिद्ध नहीं हो सकता। ईश्वरके विकारत्व दोषका परिहार कर चुका हूं। जड़ कर्मोंका स्वयं फल नियमसे न बन सकनेपर ईश्वर सापेक्ष कर्म हैं जैसे आपके शरीरमें रोमादि उत्पन्न होनेसें आत्मा सिद्ध है वैसे घासादिमें ईश्वर होनेसे उत्पत्ति आदि सिद्ध जानें। सर्व शक्तिमान ईश्वर न्याय पूर्वक पापोंसे रोकता है ऐसा न माननेपर आपके तीर्थंकरों पर भी समान दोष रहेगा। बैलके सींगसे पुरुषोंके सींग क्यों नहीं यह विषम कथन है परन्तु कार्य विना चेतन कर्त्ताके कोई नहीं होता अनन्त शक्ति परमात्मामें इच्छा स्वभाव सिद्ध कार्य करती है जैसे आपके वीतराग तीर्थङ्करोंमें उपदेश करनेकी इच्छा होती है पर वे दोषी नहीं। वैसे ही परमात्मामें भी जानो यही समाधान पापोंके विषयमें जानिये।

जैन मित्रमण्डलका चतुर्थ प्रश्न पत्र ।

सबसे पहले आप अप्रतिभानामक निग्रह स्थान प्रसिद्ध हैं क्योंकि हमने भागासिद्ध बाधित और सावयवत्व रूप कार्य्यत्वके अर्थों द्वारा अनैकान्तिक दोष दिये थे उसका आपने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, घासादि जो हमने व्यभिचार स्थान बताए हैं उन्हींमें ही आप विना किसी प्रमाणके ईश्वरकी कर्तृता मानते हैं। यदि इसी प्रकार व्यभिचार स्थलको प्रतिज्ञा वाक्यमें ले लिया तो दुनियाँमें कोई व्यभिचारी नहीं ठहर सकता है फिर अयोगोलक धूमवन् अग्नेः यहांपर भी सद्धेतुता सिद्ध हो जावेगी । परोक्ष पदार्थका स्वीकार करनेसे यह बात कैसे मान ली जावे कि ईश्वर भी है । जिस परोक्ष पदार्थका:प्रमाण है वही मान्य हो सकता है। पिता पुत्रमें जन्यजनक सम्बन्ध है इसलिए मान्य है परन्तु घासादिकमें किस प्रमाणसे ईश्वर कर्तासिद्ध होता है । यदि विना प्रमाणके माना जावे तो गधेके सींग आकाशके फूल भी मानिये । जिस अनुमानसे आप घासादिकमें कर्त्ता सिद्ध करते हैं उसीमें तो हम हेत्वाभास दोष देते हैं ।

सर्वशक्तिमान ईश्वरपर यह दोष आता है कि संसारमें अनर्थ होते हैं उनका भी वही कर्ता है। हमारे तीर्थंकरोंमें यह दोष नहीं आता, क्योंकि हम उन्हें कर्ता मानते हैं ।

इच्छा ईश्वरके क्यों पैदा होती है ? और वे नाना हैं या एक इसका भी उत्तर नहीं ।

आपने प्रागभाव प्रतियोगित्व कार्य स्वीकार किया है सो पहले पृथ्वी सूर्यादि पदार्थोंका अभाव सिद्ध कीजिये । जब संसारमें कुछ भी नहीं था तो इच्छा पहले क्यों हुई ? इच्छा भी कार्य है, वह

किस इच्छासे हुई, इस प्रकार अनवस्था दोष आता है। यदि कर्मके निमित्तसे इच्छा हुई तो पहले जीव कर्मसहित कहां है और जीवोंके कर्मोंसे ईश्वरके इच्छा हुई और ईश्वरकी इच्छासे जीवोंने कार्यद्वारा कर्म पैदा किये इसलिये अन्योन्याश्रय दोष भी आता है।

आर्य कुमार सभाका चतुर्थ उत्तर पत्र।

परोक्ष पदार्थ ईश्वर भी अनुमान प्रमाणसे सिद्ध किया। अप्रतिभानिग्रह स्थानको उद्भावन करनेसे आप निरनुयोज्यानियोगके पात्र बन गए हो। घासादि व्यभिचार स्थल हो ही नहीं सकते, क्योंकि उनमें कार्य्यत्व, बुद्धिमत्कर्तृजन्यत्वकी व्याप्ति सप्रमाण सिद्ध कर चुका हूं जैसे आप अपने तीर्थंकर तथा अपने पिताके परोक्ष जन्मको अनुमान सिद्ध मानते हैं क्योंकि आपने पिता तथा तीर्थङ्करोंके जन्मको नहीं देखा वैसे ही ईश्वर भी परोक्ष है उसे अनुमान सिद्ध जानो। हेत्वाभासोंका परिहार हो चुका। सूक्ष्म दृष्टिसे देखो सर्व शक्तिमान्में इच्छा स्वभाव सिद्ध है अनर्थका परिहार कर चुका हूं, पृथिव्यादिकोंका उत्पत्तिसे पूर्व प्रागभाव सिद्ध है इच्छा ईश्वरमें उत्पन्न नहीं इसलिए इच्छा ईक्षण ईश्वरमें अनादि है, कर्मादिके विकल्प उक्त रीतिसे परिहृत हैं, जैसे कि आपके तीर्थंकरोंके उपदेशमें दिखा चुका हूं मेरे किसी आक्षेपका उत्तर नहीं आया।

जैन मित्रमण्डलका पञ्चम प्रश्न पत्र।

परोक्ष ईश्वरको आपने कर्ता माननेमें जो हेतु दिया था उसमें हमने चारों हेत्वाभाव दिये हैं आपको उसका एक भी उत्तर नहीं सूझा इसलिए उत्तरस्य अप्रतिपत्तिरप्रतिभा, इस लक्षणसे अप्रतिभा-नामक निग्रह स्थान आपपर तदवस्थ है।

श्री तीर्थंकरत्व नाम धर्म विशिष्ट और शरीर सहित है इस लिए उनका दृष्टांत देना विषम है क्योंकि आपका ईश्वर सशरीर नहीं है। पिताको पुत्र यदि न देखे तो दूसरे लोग अवश्य देखते हैं। ईश्वरका कभी किसीको आज तक प्रत्यक्ष नहीं हुआ उसी प्रत्यक्षसे उसमें बाधा आती है इसलिए प्रत्यक्ष प्रमाण बाधित कर्ता होता है।

यदि सर्वशक्तिमान्में इच्छा स्वभाव सिद्ध है तो सदा एकसे ही कार्य होने चाहिये, सदा पानी ही पड़ता रहना चाहिए सदा गरमी रहनी चाहिये। यदि वह बदलती है तो अनित्य हुई। स्वतन्त्र पुरुषकी इच्छाको कौन ईश्वरसे बलिष्ठ बतलाता है?

इच्छामें जो अन्योन्याश्रय दोष दिया था उसका वारण नहीं किया इस लिये अप्रतिभा निग्रह स्थान आप पर तदवस्थ है।

ईश्वरकी इच्छा बदलना स्वाभाविक है या वैभाविक?

कार्य्यत्वका अर्थ प्रागभावप्रतियोगित्व किया है उसमें सूर्य चन्द्रादिका अभाव कब था?

आर्य कुमार सभाका पञ्चम उत्तर पत्र।

चारों हेत्वाभासोंका परिहार कर देनेपर भी आप बार बार उन्हींको पुकारते हैं फिर भी देखिये पृथिव्यादि कार्योंमें कार्य धर्म पाये जानेसे हेतु सिद्ध है असिद्ध नहीं। सत्प्रतिपक्ष दोष इस-लिए नहीं कि शरीरविशेषण देनेका कोई फल नहीं अर्थात् पृथि-व्यादिकं कर्त्रजन्यं शरीराजन्यत्वात् हेतुमें प्रागभावाप्रतियोगित्व उपाधि है इसलिए आपका अनुमान सोपाधिक होनेसे दूषित है।

जब प्रागभावप्रतियोगित्व ही कार्यत्व है तो उसमें आपका कोई हेत्वाभास नहीं रहता इसलिए उक्त विकल्प सब आपके कट गये। तीर्थंकर शरीरी है तोभी आप उनको प्रत्यक्ष नहीं पाते और उनके होनेमें क्या प्रमाण है ? दूसरी बात यह है कि आपने मान लिया तथा लिखदिया है कि तीर्थङ्करको हम विकारी ही स्वीकार करते हैं परन्तु प्रमेयकमलमार्तण्डके प्रथम परिच्छेदकी समाप्तिमें 'निर्दोषं परमार्थविषयं' इत्यादिसे उनको दोषरहित कहा। जो विकारी होवे वह दोषरहित कैसे हो ? बतलाइये आपका कथन सच्चा या प्रभाचन्द्रका कथन सच्चा है ? इसमें एक अवश्य ही झूंठा सिद्ध होगा। जबतक आप इसका उत्तर नहीं देते तब तक आपके शेष आक्षेपोंका उत्तर नहीं दिया जायगा।

जैन मित्रमण्डलका षष्ठ प्रश्नपत्र।

चारों हेत्वाभासोंका वारण केवल कथनमात्र और अनुमान वाक्य बोलनेसे नहीं हो जाता है। कार्यत्व हेतु ही पहिले असिद्ध है सूर्य चन्द्रमादिमें वह नहीं रहता है क्योंकि वे जन्य नहीं है, कार्यत्व वहां जाता ही नहीं।

जितने कार्य हैं वे सब सशरीर और असर्वज्ञके देखे जाते हैं इसलिये कार्यत्वविरुद्ध भी है। शरीराजन्यत्व और निःकर्मत्व हेतुओंसे सत्प्रतिपक्ष दोष भी दिया गया है इसलिये असत्प्रतिपक्ष भी है। प्रत्यक्ष वाधित तो है ही फिर आपने कैसे हेत्वाभासोंका खण्डन कर दिया ?

आपने पृथिव्यादिक कर्तृजन्य शरीराजन्य असत्प्रतिपक्षमें

प्रागभावापत्तियोगित्व उपाधि दी सो ठीक नहीं है क्योंकि उपाधिका लक्षण आपके ही न्यायदर्शनमें साध्यस्य व्यापकोंयस्तु हेतोरव्यापकस्तथा सउपाधिर्भवेत्, इस स्वसिद्धान्तसे च्युत होनेसे अपसिद्धान्त निग्रह स्थान पतित होते हैं। श्री तीर्थंकर शरीर सहित हैं दोपका अर्थ हमारे शास्त्रोंमें ज्ञानावरणादि चार कर्म हैं वे उनके नहीं हैं इसलिये वे निर्दोप हैं। विकार नाम सत्वस्तुका अवस्था बदलनेका है। ऐसा परिणमन तीर्थंकरमें है और तीर्थंकरत्व नाम कर्मकी उनको पराधीनता भी है, सर्वथा कर्मरहित सिद्ध उपदेश नहीं देते। विकारीका जो अर्थ आप दोप करते हैं वह मोहनीयन होने तीर्थंकरमें नहीं हैं। देखो समन्तभद्र कृत देवागमकी वसुनन्दिकी टीका-प्रभाचन्द्र आचार्य्य आदि हमारे कथनमें कोई विरोध नहीं किन्तु आपकी समझमें नहीं आया है। ईश्वरेच्छा स्वाभाविक है या वैभाविक और प्रागभावप्रतियोगि सूर्य चन्द्रादिकमें नहीं है इसका कोई उत्तर आप नहीं देसके हैं।

आर्य कुमार सभाका षष्ठ उत्तर पत्र।

आपके महावीर सशरीर हैं तो वह दूसरे पुरुषोंकी भांति दोष वाले और अप्रमाण ठहरते हैं, ईश्वरी इच्छा स्वाभाविक होनेपर भी सूर्यप्रकाश तथा उसकी उष्णताके समान सर्वत्र एक.रस कार्य करती है। वस्तुओंका स्वभाव अपना २ बनारहे उसमें कोई दोष नहीं। जैसे कारण निमित्त उपादान मानते हो वैसे ईश्वर भी पृथ्व्यादि पदार्थोंके प्रति निमित्त कारण सिद्ध होगया और एक तरीकेसे आपने मान लिया। हमारे सिद्धान्तमें ईश्वर समर्थ कारण

है तथापि वस्तुओंके स्वभावको अन्यथा नहीं करता किन्तु नियमानुसार ही उत्पत्ति आदि करता है। कर्मसे शरीरादिमें सो बीजांकुर न्यायकी भांति अन्योन्याश्रय दोष नहीं आता ऐसा आपके आचार्य भी अपने न्याय ग्रन्थोंमें मानते तथा आपने पिता पुत्रके सम्बंधमें भी इसी अभिप्रायसे उत्तर दिया था, मैं फिर आपसे पूछता हूं कि आपके तीर्थंकर उपदेश करनेके समय विकारी होते हैं वा नहीं ? अगर विकारी दोष वाले हैं तो आप्त न रहे फिर उनका उपदेश कैसे प्रमाण है ?

और जो आप चारों हेत्वाभास वार २ कहते इनका खण्डन कईवार पीछे करदिया है। शरीरी और असर्वज्ञके कार्य वही हैं जो घटपटादि परन्तु जीवोंकी शक्ति न होनेसे पृथिव्यादि सर्वज्ञ कर्त्ताके ही सिद्ध होते हैं।

कार्यत्व हेतुके प्रत्यक्ष बाधित कहनेसे आप भूल करते हैं। मैंने उत्तर देदिया था कि प्रत्यक्ष योग्यमें ही उक्त बाधा हो सकती है। आपने अपने पिताके जन्मको प्रत्यक्ष नहीं देखा इसका कोई आजतक उत्तर नहीं आया। तीर्थंकर आवरण रहित तभी होंगे जब उनमें आवरण मानोगे। आवरण माननेसे वह अज्ञानी अनाप्त ठहरते हैं फिर उनका उपदेश ठीक नहीं। यदि अवस्था बदलना ही विकार मानोगे तो आपके मुक्तकी भी अवस्था बदलती रहेगी। एकरस न रहनेसे वह भी अन्य पदार्थोंकी भांति दोषवाले ठहरते हैं। आपके सब हेत्वाभासादिको काट दिया गया फिर बाकी कोई हेत्वाभास नहीं रहा। आप प्रमे० से विरुद्ध कथन करने पर अपसिद्धान्त दोषके भागी हुये हैं।

जैन मित्रमण्डलका सप्तम प्रश्न पत्र ।

अशरीरीके इच्छा प्रयत्न होते हैं इस बातको आप किस प्रमाणसे सिद्ध करते हैं ? ईश्वरकी इच्छा स्वाभाविक है या वैभाविक इसका आपके पास कोई उत्तर नहीं ।

हमने पूछा था ईश्वर समर्थ कारण है या असमर्थ उपादान इसका कोई उत्तर नहीं ।

विरुद्धादि हेत्वाभासोंका कुछ भी उत्तर न देकर दूसरी बातोंमें चला जाना आपको मतानुज्ञानिग्रह स्थानमें डालता है ।

तीर्थंकर सशरीर होनेसे सदोष हैं ऐसी व्याप्ति नहीं है, शरीरकी दोषके साथ व्याप्ति नहीं है किन्तु दोषकी व्याप्ति मोहादिके साथ है इसको पहिले भी कहा गया है फिर पिष्टपेषण करना व्यर्थ है । खेद तो यह है कि आप अशरीर होनेसे ईश्वरको कर्ता मानते हैं इसमें दिये हुए दोषोंका वारण नहीं कर सके, और विषयान्तर पर चले जाते हैं ।

हम पूछते हैं शरीर रहित ईश्वर कैसे कार्य करता है इसका क्या उत्तर है तब आगे चलिये । स्वपक्षमें आये हुए दोषोंका उत्तर न करके विषयान्तर चले जाना मतानुज्ञा निग्रहस्थानमें जाते हैं ।

प्रभाचन्द्र स्वामीके विरोधका परिहार करनेपर भी अर्थात् विकारका और दोषका हमारो परिभाषामें एक अर्थ नहीं है । विकारका लक्षण . गुण विकार पर्याय, पर्याय. हैं । तीर्थंकरमें पर्याय प्रतिक्षण होती है इस लिये वे विकारी है । परन्तु पर्याय शुद्ध और अशुद्ध दो प्रकारकी होती है, मोह विशिष्ट जीवकी पर्याय अशुद्ध होती है । तीर्थंकरके मोह विशिष्ट पर्याय नहीं है इस लिये शुद्ध

पर्याय है। निर्मल जलकी लहरोंकी तरह हम मोह और दोषकी व्याप्ति पहिले भी कह चुके हैं। परन्तु आप तो पिष्टपेषण ही करते जाते हैं और कथा विच्छेद करते हैं इस लिये विक्षेप निग्रह स्थानपाति हैं। यदि ईश्वरेच्छा स्वाभाविक है तो बदलनी नहीं चाहिये। यदि बदलती है तो किस कारणसे? और वह एक है या अनेक? कुछ भी उत्तर नहीं।

ईश्वर सकर्मा अल्पज्ञ है, इच्छा प्रयत्नवान् होनेसे जो जो इच्छा प्रयत्नवान् होता है वह सकर्मा अल्पज्ञ होता है इस लिये ईश्वर भी सकर्मा और अल्पज्ञ होना चाहिये, इसका उत्तर दीजिये।

समर्थ कारणोंमें अन्वय व्यतिरेक घटता है, ईश्वरीय कर्तृतामें अन्वय्यतिरेक घटाइये।

आर्य कुमार सभाका सप्तम उत्तर पत्र।

और जो आपने ' ईश्वर सकर्मा सशरीरश्च इच्छा प्रयत्नवत्वात . इस अनुमानसे वैदिक ईश्वरको शरीरधारी सिद्ध करनेकी चेष्टा की है सो ठीक नहीं क्योंकि उसमें अल्पज्ञानवत्व उपाधि है। जहां २ अल्पज्ञान होनेपर इच्छाप्रयत्न है वहां २ शरीरपना रहो परन्तु इच्छा ईक्षग तथा नित्यप्रयत्न वालेमें शरीरका होना आवश्यक नहीं। वह सर्वशक्ति होनेके बिना शरीरके भी अपने कार्यमें समर्थ है।

हेत्वाभासोंका कई बार उत्तर देनेपर भी आपके आग्रहसे पुनः उत्तर लिखता हूँ।

आपने जो कार्यत्वमें चार विकल्प किये अवयववृत्ति आदि सो तब बन सके। यदि मैं प्रागभाव प्रतियोगित्व न मानूं समें

आपने एक भी हेत्वाभास नहीं दिया। देखिये पृथिव्यादिकोंमें कार्यत्व हैं अतः उसमें स्वरूपा सिद्ध नहीं इससे आपका वचन कट गया। नाना इच्छा अल्पज्ञोंमें होती हैं, सर्व शक्तिमान्में यह दोष नहीं आता। वह एक इच्छासे भी सब कार्य नियमानुसार कर सकता है। हमने आपके सब उत्तर दे दिये तो भी आप पुनः २ पिष्टपेषण करनेसे नहीं डरते। मेरे उत्तरोंको न समझनेसे आप अप्रतिभानिग्रह-स्थानमें आगये। मेरे अपसिद्धान्तका कोई उत्तर आपसे नहीं बना और अनिग्रहमें मतानुग्रह कथन करनेसे आप निरनुयोज्यानुयोग निग्रहस्थान सहित हैं जैसे मोहकी व्याप्ति दोषोंके साथ मानते हो वैसे शरीर वालेके साथ दोष वालेकी भी व्याप्ति बनी रही। फिर आपके तीर्थंकरोंपर वही आक्षेप बना रहा इसका उत्तर आपसे नहीं बना। शोक! कि आप मेरे लिखे हुएको ठीक २ सावधान होकर नहीं पढ़ते ऐसा मालूम होता है अतः बार २ अपनी रटी रटाई अनारत ही पढ़देते हैं। आप जो शरीर रहित ईश्वरका कार्य पूछते हैं उसका उत्तर यही है कि सर्वशक्तिमान् होनेसे उसको शरीरकी अपेक्षा नहीं "तीर्थंकराः दोषविशिष्टाः शरीरवत्वात् रथ्या पुरुषवत्" इस अनुमानसे आपके तीर्थंकर दोषवाले होनेसे आप्त नहीं फिर कैसे प्रमाण हुए, आपसे उत्तर नहीं हो सकता। ईश्वरेच्छा एक होनेपर भी उसके कार्य सूर्यकी भांति तथा गेंदके प्रक्षेपकी भांति दोष नहीं।

जैन मित्रमण्डलका अष्टम प्रश्न पत्र।

ईश्वरेच्छा नित्य है या अनित्य? और ईश्वरका स्वभाव सृष्टि करनेका है तो उसके प्रलय करनेका स्वभाव उसमें नहीं हो सकता

है ? क्योंकि विरुद्ध दो स्वभाव उसके कैसे ? यदि क्रमसे दो स्वभाव उसके माने जायँ तो संसारमें कहींपर कोई कार्य उत्पन्न होता है, कोई बिगड़ता है तो ऐसे दो विरुद्ध कार्य नहीं होने चाहिये। जब संसारका यह न्यायसिद्ध नियम है कि माता पितासे पुत्र होता है तो सृष्टिके आदिमें यह नियम कैसे लागू होगा ? यदि नियम नहीं माना जाय तो अब जन्यजनक सम्बन्ध बीज वृक्षवत् कैसे माना जाता है ?

हमने ईश्वरको सकर्मा और अल्पज्ञ सिद्ध करनेके लिये जो हेतु इच्छा प्रयत्नवत्वात् दिया था इसका वारण कुछ भी नहीं किया।

यदि आप कार्यत्वको प्रागभावप्रतियोगित्व करते हैं सो महाराज पहले चन्द्र सूर्यमें प्रागभाव प्रतियोगित्व सिद्ध कीजिये, अर्थात् सूर्य चन्द्रमा इनकी पहले नास्ति ही नहीं है तो कार्य हेतु उनमें न जानेसे असिद्ध दोष बना रहा इसलिये आप पहिले ही हेत्वाभास असिद्ध हेत्वाभासका वारण ही नहीं कर सके।

हमने आपसे पूछा था कि एक इच्छासे विरुद्ध नाना कार्य कैसे करता है इसका उत्तर केवल यह कह दिया कि वह एक इच्छासे भी सब कार्य कर सकता है, क्या यह अप्रमाणिक कथन ही पर्याप्त होगा ? इसी प्रकार मेघादिमें ईश्वरकी कर्तृता कथनमात्रसे भागासिद्ध दोषको आप किञ्चिन्मात्र भी दूर नहीं कर सकेंगे, केवल ईश्वर कर्ता है इस प्रतिज्ञासे काम नहीं चलता।

महाशय ! पहले असिद्ध दोषको ही दूर कीजिये फिर विरुद्धादि दोषोंको हटाना।

हम कह चुके हैं कि शरीर और दोषकी व्याप्ति नहीं है इसलिये शरीरवत्व हेतु व्यभिचारी है।

आर्य कुमार सभाका अष्टम उत्तर पत्र।

कार्यत्व हेतुमें असिद्ध अनैकान्तिक सत्प्रतिपक्ष भागासिद्ध आदि सब हेत्वाभास कटगये यही पूछा था, उत्तर दे दिया, आप बतलावें लोहेकी कीली (कुतुबमीनार) किसने गाड़ी देखी है तो भी वह जन्य है ऐसे ही सूर्य चन्द्रादिकको भी जान लो जैसे मोह दोषकी व्याप्ति मानते हो वैसे तीर्थंकरोंमें शरीरधारी होनेसे आपने दोष स्वीकार कर लिये कि आपके सिद्धान्तमें विरोध है।

शरीर होनेका दोष कर्तृजन्यत्वमें देते सो आप: सर्वथा न्यायकी शैलीसे बाह्य कहते हैं। दृष्टान्तके सब धर्मपक्ष वा साध्यमें नहीं पाये जाते। आपका प्रभाचन्द्र आचार्य भी प्रमे० २य परिच्छेद पत्र ७१में मानता है कि " न चाशेषधर्माणां साध्यधर्मिण्यापादनं युक्तं सकलानुमानोच्छेद प्रसङ्गात् " दृष्टान्तके सब धर्म दार्ष्टान्तिकमें नहीं, फिर आपका आक्षेप वृथा है।

" चन्द्र सूर्यादय: स्वोपादान कारणनिष्ठ प्रागभाववन्त: भावत्वे सतिजन्यत्वात् " घटवत् इस अनुमानसे चन्द्रादिमें प्रागभावप्रतियोगित्व सिद्ध हो गया अतएव:—

१ ईश्वरकी इच्छा स्वाभाविक है वैभाविक नहीं।

२ ईश्वरकी इच्छा एक है और एकसे भी न्यायपूर्वक सब कार्य हो रहे हैं। एकसे भी नाना कार्योंका दृष्टान्त देखिये। जैसे एक बिजुलीकी लहरसे मकानोंमें रोशनी, पंखा चलना, ट्राम्वेका चलना, पानी खींचना, आटा पीसना, कितावें छापना, लोगोंको

मारना और बीमारको कमजोरीकी हालतमें ताक़त देना आदि कई कार्य पाये जाते हैं इसी प्रकार ईश्वरकी इच्छामें भी जान लें।

जैन मित्रमण्डलका नवम प्रश्न पत्र।

चारों हेत्वाभासोंके अतिरिक्त ईश्वरको कर्त्ता माननेमें ये भी दोष आते हैं। ईश्वरका कार्योंके साथ देशव्यतिरेक सिद्ध नहीं हो सकता है क्योंकि ईश्वर व्यापक है। यदि उसका कहीं अभाव होता तो देश व्यतिरेक बनता इसी प्रकार उसे नित्य होनेसे कालव्यतिरेक भी सिद्ध नहीं होता है। किसी समय ईश्वर सर्वत्र है परन्तु कहींपर किसी समय कार्य नहीं भी होता है इसलिये अन्वय भी नहीं है। विना अन्वय व्यतिरेकके ईश्वरका कार्योंके साथ कार्यकारण भाव नहीं है।

दूसरे—प्रयत्न अव्यापक पदार्थमें ही हो सकता है व्यापकमें नहीं। ईश्वर व्यापक है इसलिए निष्क्रिय होनेसे वह प्रयत्नवाला नहीं बन सकता है और विना प्रयत्नके कार्य भी नहीं कर सकता है।

तीसरे—निराकार ईश्वरसे साकार पदार्थ नहीं हो सकते हैं आकाशकी तरह।

यदि ईश्वरेच्छा स्वाभाविक है तो बदलनी नहीं चाहिए लेकिन हम देखते हैं कि वह किसी कार्यको उत्पन्न करता है और उसीको पुनः नष्ट करता है।

स्वाभाविकके लिए देशकाल आकारके बदलनेका नियम नहीं है—एक इच्छासे नाना कार्य होते हैं इसमें बिजलीका दृष्टांत विषम

है क्योंकि वह जड़ तत्व है और उसमें अनेक शक्तियां हैं। बिजली अनेक परमाणुओंका स्कंध है। इसलिये अनेकसे ही अनेक कार्य होते हैं एकसे नहीं।

सूर्य चन्द्रमामें जो आपने प्रागभावसिद्ध किया है वह अनुमान असिद्ध हेत्वाभास ग्रस्त है। और अन्योन्याश्रय दोष विशिष्ट है। क्योंकि जन्यत्व उनमें हम नहीं मानते हैं। जन्यत्वसे प्रागभावकी सिद्धि और प्रागभावसे जन्यत्व (कार्यत्व) की सिद्धि।

लोहेकी कीली प्रासादादि विलक्षण कार्य नहीं है जिनके कि हम प्रतिदिवस कार्य देख रहे हैं इस लिये इसके कर्त्ताका अनुमान होता है। सूर्यादि प्रासादादिसे सर्वथा विलक्षण है।

योगियोंमें क्रमसे दोष रहितकी और शरीर रहितकी व्याप्ति है।

आर्यकुमार सभाका नवम उत्तर पत्र।

एक ईश्वरेच्छामें अनेक कार्योंके लिये और दृष्टांत लीजिये— ईश्वरेच्छा एक है परन्तु वस्तुओंके भिन्न भिन्न स्वभावसे और जीवोंके भिन्न २ कर्मोंसे असर पृथक् २ हैं जैसे आगका असर मोमपर चपड़े-लाख पर मिट्टीके गीले गोले पर अलहदा २ है मोम और चपड़ा पिघल जाता हैं परन्तु मिटीका गीला डेला सुख जाता है, और जैसे एक सूर्यकी गरमीसे एक वृक्ष सुख रहा है दूसरा प्रफुल्लित हो रहा है और जैसे एक वृष्टिसे नीममें कड़वा रस आममें मीठा रस हो रहा है और एक बादलसे कोई बीज उग रहा है कोई सड़ रहा है। शक्ति एक है लेकिन उसके नतीजे पदार्थों पर भिन्न २ होते हैं

वैसे एक ही ईश्वरकी एक इच्छा या ईक्षण शक्तिसे नाना कार्योंमें कोई दोष नहीं है। जो ईश्वर कर्त्ता में अन्वयव्यतिरेकका अभाव कथनसे दोष दिया सो ठीक नहीं। जैसे आपके मतानुसार अमूर्त्तिक सर्व व्यापी तथा अनन्तप्रदेशी आकाशका जीवादि द्रव्योंके अवकाश प्रदानरूप क्रियामें व्यतिरेक न होनेपर भी कार्य कारणभाव है वैसे सर्व व्यापक ईश्वरका व्यतिरेक न होने पर भी पृथिव्यादियोंके प्रति कार्य कारणभावमें कोई बाधा नहीं, जन्यप्रयत्न अव्यापक पदार्थोंमें होता है। नित्यप्रयत्न व्यापक ईश्वरका ही धर्म है। निराकार ईश्वर भी सर्वशक्तिमान् होनेसे कार्योंको उत्पन्न कर सक्ता है और वह निमित्त है उपादान नहीं। मेरे बिजुली दृष्टान्तका आपने कोई परिहार नहीं किया। जब आप कीलीकी उत्पत्ति अनुमानसे मान गये तो फिर ईश्वर भी अनुमानसे सिद्ध है अर्थात् सूर्यादि कीलीकी भांति जन्य होनेसे कर्त्ता सापेक्ष हैं। योगियोंकी अवस्थामें तीर्थंकरोंको शुद्ध मानते हैं फिर स्वाभाविक शुद्ध ईश्वरके स्वीकारसे क्यों हिचकते हो?

जैन मित्रमण्डलका दशम प्रश्न पत्र।

चौथा दोष—

ईश्वर पहले ही जब सृष्टिका प्रारम्भ करता है उस समय परमाणुओंसे कैसे कार्य बनाता है? जिस प्रकार कुम्हार घड़ा बनानेके लिये दण्ड चक्र डोरा जल आदिकी सहायता लेता है, उस प्रकार ईश्वरके पास उस समय क्या सामग्री थी? यदि थी तो वह किसने बनाई? नहीं थी तो परमाणुओंको कार्यरूप लानेके लिये ईश्वर

कैसे समर्थ हुआ ? व्यापक ईश्वर विभिन्न स्थलोंमें पड़े हुए परमाणु-ओंमें किस प्रकार क्रिया करता है ? क्या परमाणुओंको आज्ञा देता कि तुम कार्यरूप हो जाओ ? ऐसा माननेसे परमाणुओंमें श्रवण इन्द्रिय और ज्ञानका प्रसंग आता है । आपने जो बादल वगैरहका दृष्टान्त दिया है वह समर्थ कारणके विषयमें विषम है क्योंकि हमारे यहां उपादान शक्ति हरएक पदार्थमें भिन्न २ है, मेघादि आम्रादिके रस बदलनेमें समर्थ कारण नहीं है तथा पहले भी हमने लिखा था कि मेघ बिजली आदिकोंमें अनेक परमाणु हैं और वे भिन्न २ कार्य करते हैं ।

कुम्भकारमें साध्यांश अशरीरत्व सर्वज्ञ बुद्धिमत्कर्तृत्व एक अंश भी नहीं घटता है इसलिये साध्य विकल दृष्टान्त और विरुद्ध साधन है। सामान्य अग्निके साथ सामान्य धूमकी व्याप्ति है, कोयले आदिकी अग्निके साथ नहीं। परन्तु यहाँपर विशेषकर्त्ताको साध्यकोटिमें लाया जाता है इसलिये कुम्भारमें साध्यांशका एक देश भी नहीं घटता। निराकार ईश्वर साकार पदार्थोंको नहीं रह सक्ता है। ऐसा कोई दृष्टान्त नहीं है । अवगाहन देनेमें आकाश समर्थ कारण नहीं है । आप हमारे सिद्धान्तको नहीं समझकर ही बोलते हैं ।

सृष्टिकी आदिमें मनुष्योंके विशिष्ट पुण्य पाप जब थे ही नहीं तो विलक्षण सृष्टि मनुष्योंकी कैसे की ?

आर्यकुमार सभाका दशम उत्तरपत्र ।

आप जो लिखते हैं कि सूर्यादि पदार्थोंमें जन्यत्व नहीं पर कार्य्यत्व है, सो धन्य हो पंडितजी ! क्या कार्य्यपना और जन्य-पना दो हुवा करते हैं ? क्या घट तथा कलश कहनेसे दो अर्थ निक-

लते हैं ? यहां पर आपने भारी भूल की है । पण्डितजी, आप उत्तर-की व्याकुलतासे और मतवाले बन गये इस लिये चित्तके औरमें लगनेसे आप पर विक्षेप नामक निग्रह स्थान आता है ।

आप कहते हैं कि सूर्यादि पदार्थोंमें मकानोंकी तरह शकल न पाये जानेसे वह बुद्धिमान् कर्त्तासे बने नहीं यह कथन ठीक नहीं। सारे पदार्थोंकी शकल भिन्न२ होती है क्योंकि उनका कारण भिन्न२ है। परन्तु इससे यह कभी सिद्ध नहीं हो सक्ता कि जड़ पदार्थोंकी आकृति बिना किसी चेतनके बन जाय, और **ध्यान करें जिसमें परिणाम होता रहता है वह जन्य है**। वैसे परि-णामी चन्द्रादि जन्य होनेसे कर्त्तासापेक्ष ही सिद्ध होता है, **सर्व-शक्तिमान् ईश्वर बिना प्रकृति जीव जो अनादि सिद्ध है किसी कारणकी सहायता अपेक्षित नहीं, अपनी स्वाभाविक शक्तिसे ही पदार्थोंमें उत्पत्ति आदि कर लेता है**। अब नये प्रश्न आरम्भ करते हैं। मालूम होता है कि पहले प्रश्नोंका समाधान मान गये हो, सृष्टिके आरम्भ-में मनुष्यादि सांचेके समान बनाये गये पीछे मैथुनी सृष्टिका नियम रक्खा यह उत्सर्गापवाद जानो ।

जैन मित्रमण्डलका एकादशम प्रश्नपत्र ।

आपने कार्यत्वका अर्थ प्रागभावप्रतियोगित्व किया था उसके अनुसार भी सूर्य चन्द्रादि पदार्थोंमें कार्यत्व सिद्ध नहीं होता है । क्योंकि उनके अवयव किसी कालमें भी पृथक्२ नहीं थे। इसलिये जबतक आप उनके अवयव भिन्न२ सिद्ध नहीं करदेंगे, तब तक आपका प्रागभावप्रतियोगित्व रूप कार्यत्व हेतु सद्धेतु नहीं हो सकता।

इसलिये हमारा दिया हुआ असिद्ध दोष ज्योंका त्यों रहा। जिसका परिहार न कर सकनेके कारण आप इधर उधरकी व्यर्थकी बातोंमें समयको पूरा कर देते हैं। इसलिये (अनियमात् कथा प्रसंगो विक्षेपः) इस सिद्धान्तानुसार आप ही विक्षेप नामक निग्रहस्थान पाती हो जाते हैं।

आपके कथनानुसार जब जीव प्रकृति ईश्वर तीनों अनादि हैं तो ईश्वर सर्व व्यापक होनेके कारण प्रकृति और जीवसे भिन्न नहीं हो सक्ता है। और प्रकृतिको परमाणु रूपमें अनादि माननेसे यह प्रश्न होता है कि परमाणु आपसमें मिले हुए हैं या भिन्न २ हैं। यदि मिले हुए हैं तो अनादि संयोग होनेसे कार्यत्वपना भी अनादि सिद्ध है। इसलिये प्रागभावप्रतियोगित्व कार्यत्व हेतु असंभव ही है। यदि भिन्न२ मानते हो तो प्रलयावस्थामें एक परमाणु दूसरे परमाणुसे कितने फासले पर रहता है?

आपने कहा था कि कुंभार अल्पज्ञ है इसलिये उसे दण्ड चक्रादि सामग्रीकी आवश्यकता है परन्तु ईश्वर सर्वशक्तिमान् है इसलिये उसे किसी सामग्रीकी आवश्यकता नहीं है। सांचेके समान पहले सृष्टि हुई है तो साँचेमें भी तो सामग्रीकी आवश्यकता पड़ती है। क्या आप विना उपकरणके किसी प्रकारका साँचा ढाल सकते हैं?

विना चेतनके कोई मैटर शक्लमें नहीं आ सकता इस विषयमें हम कई वार सूर्य चन्द्रादिकका दृष्टान्त दे चुके हैं। जब तक आप उक्त पदार्थोंमें प्रागभाव प्रतियोगित्व रूप कार्यत्व सिद्ध न कर सकेंगे तब तक चेतनाधिष्ठित कहना वचनमात्र ही है।

आपका वार२ हमें न्याय शैलीसे बाह्य कहना कहां तक

युक्ति संगत है इसका निर्णय विद्वान् लोग स्वयं करेंगे ही। इसी-लिये तो लिखित शास्त्रार्थ किया गया है।

दूसरे कुंभकारके दृष्टान्तके विषयमें जो आपने प्रमेयकमल-मार्तण्डका उल्लेख देकर दार्ष्टान्तके सभी धर्मोंका दृष्टान्तमें निषेध किया है सो महाशयजी कृपा कर बतलाइये सर्वज्ञ अशरीरी ईश्वरको कर्ता साध्य बनाते हुए कुंभकार दृष्टान्तमें कौनसा अंश लाते हो? यदि दृष्टान्तमें साध्यांश ही घटित न हो तो उसे, उसका दृष्टान्त ही नहीं कहना चाहिये। यहां पर साध्य सामान्य कर्ता नहीं है। यदि सामान्यकर्ताको ही साध्य समझा जायगा तो सभी जीव कर्ता हो जायंगे। कोई पुरुष विशेष नहीं सिद्ध होता।

इसलिये जबतक आप साध्य विकल दृष्टान्त विरुद्ध हेत्वाभास तथा सूर्यादिमें असिद्ध हेत्वाभासका कारण न करेंगे तब तक आगे बढ़ना शास्त्रार्थ कोटिसे सर्वथा बाहर है।

आर्य कुमारसभाका एकादशम उत्तर।

पं०जी, आपने एक बड़ी भारी भूल की है जो प्रागभावाप्र-तियोगित्व उपाधिमें न्यायदर्शनका नाम लिखकर किसी अन्य ग्रन्थका प्रमाण कहा जिससे उक्त उपाधिमें दोष भी नहीं आता। मालूम होता है कि न्यायदर्शनका आपने दर्शन नहीं किया। आप स्पष्ट बतलाएं 'साध्यस्य व्यापको यस्तु हेतोरव्यापकस्तथा' यह न्यायदर्शनमें कहां पाठ आया है स्पष्ट दिखलाइये।

और अब ध्यानसे सुनें—

कार्यत्व तथा बुद्धिमत्कर्तृजन्यत्वकी व्याप्ति घटपट आदि **उभयवादि सम्मत जड़ पदार्थोंमें व्याप्ति सम्बन्ध**

सिद्ध है जिससे पृथिव्यादि कार्योंमें भी कार्यत्वके पाये जानेसे ईश्वरकर्ताकी सिद्धि निर्बाध है इस कार्यत्वहेतुमें स्वरूपा सिद्धि भी नहीं क्योंकि कार्यपना तो सब जन्य पदार्थोंमें पाया जाता है वैसे ही सूर्य चन्द्रादि पदार्थोंमें भी। जो आपने कहा कि सूर्यादिके अवयव पृथक्२ दिखलाए तभी उनका कार्यपना होगा सो ठीक नहीं क्योंकि कार्यत्व सावित करता है कि इसका अवश्य विनाश भी होगा। जो २ भावकार्य होता है वह अवश्य ही विनाशी होता है फिर स्पष्ट है कि वह जन्य होनेसे चेतनकी अपेक्षा अवश्य रखते हैं। आपने आज तक एक भी तो दृष्टांत नहीं दिया जो बिना किसी चेतन कर्त्ताके बना हुआ हो। जिन सूर्यादिको आप चेतनके बिना जन्य कथन करते हैं वह तो साध्य कोटिमें है, जो अनादि होनेसे ईश्वरको आपने प्रकृति जीवसे अभिन्न कथन किया सो सर्वथा न्यायके विरुद्ध है क्योंकि जडत्व अल्पज्ञत्व धर्म उनके परस्पर विभेदक हैं परमाणु अवस्थामें प्रत्येक भिन्न२ होता है, जैसे कुम्भकारको दण्डादिकी आवश्यकता वैसे परमात्माको आवश्यकता नहीं क्योंकि वह सर्व शक्तिमान् है, हां उपादान कारण प्रकृतिमत्पिण्डके समान है, और जो सांचेके विषयमें आपने कहा सो भी ठीक नहीं क्योंकि प्रकृति उपादानसे ईश्वरने बुद्धिमान होनेसे सांचा बना लिया जैसे कारीगर अपनी बुद्धिसे लकडीमें खिडकी वगैरः निकाल लेता है अथवा लोहार आदि मट्टीका सांचा बना लोहा ढाल लेता है इससे आपका कथन निर्मूल सिद्ध है।

जैन मित्रमण्डलका द्वादशम प्रश्न पत्र।

मुक्तावलीको क्या आप न्याय और वैशेषिक दर्शनको नहीं मानते हैं? मुक्तावलीको क्या आप अप्रमाण मानते हैं? जो पदार्थ उसमें कहे गए हैं वे क्या न्यायदर्शनसे विरुद्ध हैं।

आप जो कहते हैं कि सूर्य चंद्रादि साध्य कोटिमें पडे हुए हैं उन्हे ही क्यों दृष्टांत बताते हो सो महाराज, साध्यकोटि विवादाध्यासित है नकि सिद्ध, इसीलिये उसमें दोष दिया जाता है। सूर्यादिकमें हम कार्यत्व ही असिद्ध उनके पृथक् २ अवयव पहले सिद्ध कीजिये प्रतिज्ञा मात्रसे कार्यत्व सिद्ध नहीं होता है।

आपने कहा कि कोई पदार्थ विना कर्ताके नहीं होता सो महाराज, सूर्य चंद्रमा ईश्वरेच्छा पर्वत, घास, ओला, समुद्र नर्मदाके गोल पत्थर, बांसोंमें अग्नि, पानीका वरसना, दवाईका रोगको दूर करना ये सब बिना कर्ताके ही सिद्ध हैं।

सृष्टिकी आदिमें सांचा स्वीकार किया था उसका उपकरण कौन था? कुम्भकारमें ईश्वरकी कर्तृताका कौनसा अंश लाते हो सो कुछ नहीं कहा इसलिये विरुद्ध हेत्वाभास तदवस्थ है। ईश्वरने सांचेको बनाकर सृष्टि बनाई सो साक्षात् ही क्यों नहीं बनाली? क्या मनुष्योंके सांचेकी तरह जानवर वगैरह तयार किये थे? सांचेमें ढालनेके पहले जीवात्मा कहां किस२ रूपमें घूम रहे थे? उत्तर दीजिये। साध्य विकल दृष्टांत असिद्ध विरुद्ध हेत्वाभासका कारण पहिले कीजिए तब दूसरा प्रश्न उठाना आपको योग्य है।

आर्य कुमारसभाका द्वादशम उत्तर पत्र।

कईवार उत्तर दिया गया फिर सुनिए। दृष्टांतके जिस धर्मकी व्याप्ति हो वही माना जाता है। कार्यत्वके सिरपर कर्तृजन्यत्वकी

व्याप्ति है। अगर आप सब ही धर्म मानेंगे तो मैं आपसे पूछता हूं क्या वन्हिधूमकी व्याप्ति सब अंशोंमें हो सकती है ? इस सामन्यतोदृष्ट अनुमानसे बुद्धिमत्कर्त्ताकी सिद्धिमें कोई दोष नहीं जैसे दर्शन तथा स्पर्शन द्वारा एक शरीरमें आत्माकी सिद्धिसे इन्द्रियोंका नानापन भी साथ ही सिद्ध हो जाता है वैसे ही उक्त अनुमानसे सर्वज्ञ कर्त्ता ईश्वर सिद्ध है। कईवार हेत्वाभासोंका परिहार कर देनेपर भी आप बार २ वही रटते हैं। अच्छा सुनिए कार्यत्वहेतु विरुद्ध इसलिए नहीं कि वह अपने साध्यकी व्याप्तिवाला है और जो आप कुलालादिके समान ईश्वरको शरीरवाला तथा अल्पज्ञ कथन करते हैं वैसे ईश्वर भी हो सो ठीक नहीं क्योंकि उसमें प्रागभावाप्रतियोगित्व उपाधि दी गई जिसका आपसे खण्डन नहीं हुआ अर्थात् व्याप्तिका अवच्छेदक धर्म शरीर विशेषण नहीं व्यर्थ है, यह हेतु व्यभिचारी भी नहीं क्योंकि साध्यके अभाववाले अधिकरणमें नहीं पाया जाता।

पं० जी शोक है कि न्यायाचार्य होनेपर भी आप मुक्ता-वलीको न्याय दर्शन कहते हैं। न्यायदर्शन बनानेवाला गोत्तम और मुक्ता० का बनानेवाला विश्वनाथ है। जितने आपने सूर्यादि दृष्टांत विना चेतनके कहे वह सब साध्य हैं। वाह पं० जी, ईश्वरकी इच्छा-को मैंने कब जन्य माना ? आप तो मेरी पूर्वापर बातको भूल जानेसे अप्रतिभा नाम निग्रह स्थानमें हैं, बांसकी अग्नि कोयला पर्वत आदि सब साध्य है। धन्य हो साध्यको भी दृष्टान्त कहते हो।

जैन मित्रमण्डलका त्रयोदशम प्रश्न पत्र।

दर्शनका अर्थ है सिद्धान्त सो महाराज, क्या मुक्तावली

न्यायसिद्धान्तसे बाहर है अथवा न्याय सिद्धान्तवादियोंको अप्रमाण है ? गौतमका बनाया हुआ सूत्र ही क्या केवल न्याय सिद्धान्त ग्रन्थ है ?

ईश्वरेच्छा यदि जन्य नहीं है तो क्या सदा एकसी रहती है ? यदि एकसी है तो सदा एकसेही कार्य्य होंगे फिर संसारके भिन्न २ कार्योंका कर्त्ता ईश्वर कैसे हो सकता है ? ईश्वरेच्छा सृष्टिको बनानेकी है या बिगाड़नेकी। पहले सृष्टिको बनानेकी इच्छा होती है फिर संहारकी तो क्या वह जन्य नहीं हुई ? जब जन्य हुई तो कार्य्यत्व हेतु उसमें भी रहा इस लिये उसका भी कर्ता होना आवश्यक है।

आपने अभी कहा था कि ईश्वरने सोचा सो क्या सोचना नवीन कार्य नहीं है ? यदि है तो अवश्य ही उसका दूसरा ईश्वर कर्त्ता होना चाहिये।

यदि ईश्वरके सोचने मात्रसे सांचा बन गया तो एकदम सोचते ही सर्व कार्य अनाद्यनन्त क्यों नहीं बन गये क्योंकि वह समर्थ कारण है।

यदि पर्वत वगैरह साध्य हैं तो महाराज साध्यको सिद्ध किस प्रमाणसे करते हो ? जो कुम्भकारका दृष्टान्त देते हो वह भी तो साध्य कोटिमें आ गया। साध्य कोटिमें आनेसे व्याप्तिका ग्रहण ही नहीं हो सकता है।

विना व्याप्तिके अनुमान ही नहीं बन सक्ता, विना अनुमानके ईश्वर कर्ता कैसे सिद्ध होगा ?

दुनिया भरको साध्य कोटिमें लानेसे कोई पदार्थ सिद्ध नहीं

हो सक्ता है क्योंकि हेतु दृष्टान्त और पक्ष तो अवश्य प्रसिद्ध होना चाहिये साध्य उनसे पृथक होता है। क्या कभी कोई विचार करने मात्रसे सांचा आदि कार्य हो सकता है? यदि विचार मात्रसे कार्य्य सिद्ध हो जाय तो आकाश पुष्प गर्दभके सींग आदि भी सिद्ध हो जाना चाहिये। मुझे आपकी इस कथनशैलीपर जोकि निःसार और युक्तिशून्य है हास्य होता है। महाराज विषयान्तरमें न जाकर भागासिद्ध और असिद्धादोषका पहले वारण कीजिये, सूर्य चन्द्रादिके अवयव तो सिद्ध कीजिये।

आर्य कुमारसभाका तृयोदशम उत्तरपत्र।

कार्य्यत्व हेतुका कोई प्रतिपक्ष न होनेसे यहां सत्प्रतिपक्ष हेत्वाभास भी नहीं, प्रत्यक्षकी योग्यतावालेमें ही प्रत्यक्ष बाधा होती, ईश्वर प्रत्यक्ष योग्य नहीं इस न्यायकी शैलीको न जानकर आपकी केवल कल्पना है सचाई नहीं, सार यह है कि आप साध्य दृष्टान्तके सब धर्मोंके मिलानेसे उत्कर्ष समा जातिका प्रयोग करते इसलिये आप निगृहीत हो गये पराजित हो गये इस रीतिसे स्वरूपासिद्ध, भागासिद्ध, विरुद्ध तथा सत्प्रतिपक्ष और अनैकांतिक आदि सब हेत्वाभासोंका खण्डन हो गया और प्रागभावाप्रतियोगित्व रूप कार्य्यत्व ज्योंकात्यों निर्दोष बना रहा जिससे ईश्वरकी सिद्धि स्पष्ट हो गई। अमूर्त्तिक सर्व व्यापी आपके माने अनन्त प्रदेशी आकाशके दृष्टान्तसे व्यतिरेकके बिना भी जगत् तथा ईश्वर कार्य

---

१ बिना किसी प्रमाण युक्तिके केवल आपके कथन मात्रसे ही क्या सब हेत्वाभास कट गये ! कहनेकी शैली अच्छी है

जै. मि. मं.

कारण मात्र सिद्ध कर दिया जिसका उत्तर आपसे कोई नहीं बना।

सूर्यचन्द्रादयः सावयवाः जडोपादानकत्वात् घटवत्, इस अनुमानमें सूर्य चन्द्र अवयववाले सिद्ध होनेसे कार्य हुए। कार्य होनेसे कर्तृजन्यत्वकी सिद्धि उक्त रीतिसे स्पष्ट है फिर आपका असिद्धहेत्वाभास कट गया जो आप वार२ ईश्वरेच्छाके विषयमें दोष देते जिस का समाधान अनेक दृष्टान्तोंमें कर चुका पर आप भूल जाते हैं। फिरभी सुनिये जैसे मेरे राज्यमें अमन रहे, यह एक इच्छा शहनशाहकी है इससे कोई कैद होता, कोई नौकरीकी तरक्की करता और कोई भिन्न व्यवस्थामें है। इच्छा एक होनेपर सब अनेक काम होते ऐसे ईश्वरकी एक इच्छासे सब कार्यकी सिद्धि होनेमें कोई दोष नहीं।

जैनमित्रमण्डलका चतुर्दशम प्रश्न पत्र।

सूर्यादिकमें जब हम कार्य्यत्व ही नहीं स्वीकार करते हैं फिर जड़ोपादान कारणक कहना हि व्यर्थ है, जब मनुष्य ही नहीं है तब उसमें ब्राह्मणादि भेद करना व्यर्थ हैं। आपका दिया हुआ हेतु ही असिद्ध हैं। यह ऐसा ही है जैसा कि अन्धेके लिये अन्धेकी योजना करना।

हमने कहाथा कि कुम्भकारादि भी साध्यान्तःपाती है फिर कार्यकी व्याप्ति किस दृष्टान्तसे होती है सो इस विषयमें आपने कुछ भी उत्तर नहीं दिया और दूसरी ही बात शुरू करदी, पहिले इसका उत्तर दीजिये।

शाहन्शाहकी इच्छाका दृष्टान्त हमारे ही अनुकूल है। बादशाहकी प्रति समय भिन्न २ ही इच्छा होती है किसीको दण्ड देनेकी किसीके उपकार करनेकी।

ईश्वर जब सर्वज्ञ है तो उसने सिंह हिरण व्याघ्र मच्छली आदि विरोधी वस्तुऐं क्यों बनाई तथा वेश्यादि अनर्थकारी पदार्थ क्यों बनाये और वह जब सर्वशक्तिमान् है तो क्यों नहीं मुझे अपना खण्डन करनेसे रोकता है ।

आप जो चेतन कर्ता मानते हो तो क्या चेतन सामान्य लेते हो या विशेष ? यदि सामान्य लेते हो तो सभी कर्ता सिद्ध हो जाता हैं जैसे कि कुलालादिको आप मानते हो। यदि विशेष कर्ता लेते हो तो आपका हेतु व्यभिचारी है और दृष्टान्त साध्य विकल है । और बतलाइये सृष्टि करना स्वभाव है उसका या प्रलय करना स्वभाव है ।

आर्य कुमार सभाका चतुर्दशम उत्तरपत्र ।

सर्वशक्तिमान् परमेश्वरके ईक्षण प्रकृत्यादिद्वारा सृष्टि उत्पन्न होती। एक इच्छासे नाना कार्योंकी उत्पत्ति बिजुलीकी लहर आदि-से सिद्ध कर चुका हूं और प्रमेय० लेखानुसार आप उल्टा कथन करनेसे अपसिद्धांतके भागी बन गये हो, व्यापक चेतन होनेसे अपनी शक्तिद्वारा समर्थ निमित्त कारण है असमर्थ नहीं। आपके सब आक्षेपोंका समाधान कर दिया और आप कहते हैं कि घट आदि दृष्टांतसे साध्यांशमें क्या समता है उसका उत्तर यह है कि बुद्धि-पूर्वक उत्पादक होना ही हैं अर्थात् कुम्भकार भी अपने इलमसे मट्टी या कपालोंको दूसरी शकलमें लाता वैसे ईश्वर भी प्रकृतिको एक विशेष आकृतिमें लाता है और जो आंखोंसे देखा जाता है वही हो सकता है यह कहना आपका सर्वथा भूल है । आपने अपने पिताके जन्मको नहीं देखा पर पिताको मानते हैं, ईश्वरकी

एक शक्ति एक इच्छासे ही नाना फल होते हैं, ध्यान दीजिये साइंससे साबित है कि सूर्य चंद्रादि पदार्थ घट रहे हैं सां० वेत्ताओंने साबित किया कि सूर्य्यमें एक काला दाग आ गया है। चेतनत्वसामान्यकी व्याप्ति होनेपर भी उसकी विशेषता पदार्थोंकी भिन्न शकल साबित करती है इसलिये कार्यत्व हेतुमें विशेष विरोध दोष भी न रहा, आपका ईश्वर वीतराग रहो क्योंकि वह पहिले रागी होनेसे बंधनमें था परंतु हमारा ईश्वर ऐसा नहीं सर्वथा शुद्ध है, सिंहादि विरोधी वस्तुओं सृष्टिप्रवाह अनादि होनेसे कर्मानुसार है और बादलकी न्याँई एक ही ईश्वरकी प्रवृत्तिसे स्वभावानुसार सब वस्तुएं बन गईं।

जैनमित्रमंडलका पञ्चदशम प्रश्न पत्र।

हमने यह नहीं कहा कि हमने जो अपनी आंखोंसे देखा वही प्रमाण है किन्तु जो किसी न किसी व्यक्तिने जिसे देखा हो वही अनुमान प्रमाणमें आसक्ता है। बिना इसके अनुमान ही नहीं बनता है। आपने हमारे अभिप्रायको नहीं समझकर ही व्यर्थका प्रलाप किया है। पिताको पुत्रने यद्यपि नहीं देखा हो तो दूसरोंने अवश्य देखा होगा। ईश्वरको जगत् बनाते किस ने देखा है? दृष्टान्त ही नहीं बनता।

आपका कथन है कि बिना चेतनाके शकल ही नहीं आती सो महाराज, परमाणुकी शकल है या नहीं, यदि नहीं है तो द्व्यणुकादि कार्योंमें शकल कभी नहीं आ सक्ती है। यदि शकल है तो फिर ईश्वर उनका भी बनानेवाला होना चाहिये, यदि नहीं है तो भागासिद्ध दोष और स्ववचन बाधित दोष आता है,

ईश्वरकी भी कोई शकल है या नहीं ? यदि है तो उसका भी कोई कर्ता होना चाहिये। यदि नहीं हैं तो शकलका लक्षण कीजिये ? विना लक्षण किये दोषोद्घाटन तद्वस्थ है।

हम पहले भी पूछ चुके हैं कि आपका सामान्य बुद्धिमान् साध्य है या विशेष ? यदि सामान्य है तो सभी जीव कर्ता ठहरते है फिर आपका ईश्वर कर्ता नहीं सिद्ध होता। यदि विशेष मानते हो तो कुँभारमें साध्यांश नहीं जाता इसलिये साध्य-विकल द्रष्टांत तद्वस्थ है। आप इस विषयमें गोलमाल ही करते हैं स्पष्ट कीजिए।

साइन्सको ही यदि प्रमाण मानते हैं तो साइन्स ईश्वरको कर्ता मानकर उसके परतन्त्र नहीं बनती। वह तो बिजली आदि पदार्थोंमें जिनके कि द्वारा अनेक कार्य हो रहे हैं अनन्त शक्ति मानती है। जोकि आपके विरुद्ध साध्य सिद्ध करती है।

ईश्वरका सृष्टि बनाना स्वभाव है या प्रलय करना इसका कोई उत्तर नहीं।

कुँभकारको साध्यान्तःपाती होनेसे दृष्टांताभावमें व्याप्ति नहीं बनती इसका कोई उत्तर नहीं।

ईश्वर सिद्धि भी एक कार्य है उसको ईश्वरने किया या नहीं ? यदि किया है तो सूर्य चन्द्रादिकी तरह ईश्वरका कर्तृत्व कार्य नहीं किया है तो आप उसे कर्ता क्यों स्वीकार करते हैं अन्यथा गगन-कुसुमको भी मानिये।

प्रलयमें जीव कर्म सहित है या रहित ? यदि सहित है और ईश्वर मौजूद है फिर सृष्टि रूप कार्य उसकी इच्छासे क्यों नहीं

होता यदि कर्मरहित है ? तो मुक्तात्मातुल्य है तो किसके लिये सृष्टि रचता है ?

आर्य कुमारसभाका पञ्चदशम उत्तरपत्र ।

जो आपने शाहनशाहकी इच्छाको घटने बढ़नेवाला कहा सो रहो पर उसकी एक इच्छासे अनेक कार्योंकी सिद्धि अंशमें दृष्टान्त दिया गया है। सब अंशमें समानता मानोगे तो अनुमानकी कथा ही जाती रहेगी और ध्यान रहे यदि ईश्वरको कर्ता न माना जाय तो जड़ कर्मोंके फलकी व्यवस्था भी न रहेगी क्योंकि कर्म भी जड़ होनेसे फल देनेके लिये चेतन सापेक्ष सिद्ध होते है जैसा कि राजादिका सेवा कर्म राजादि द्वारा फलको उत्पन्न करता हैं। पं० जी आप जगह २ भूल करते हैं। पहले आप बतला आये हैं कि सूर्यादि कार्य हैं,[1] आज आप उनको कार्य कथन नहीं, आपकी युक्ति पूर्वापर विरुद्ध है, और सामान्यतोदृष्टानुमानसे ईश्वरकी सिद्धिमें धर्मी ईश्वरके प्रत्यक्ष आवश्यकता भी कोई नहीं अर्थात् जैसे पर शरीरकी चेष्टासे आत्माका अनुमान होता है वैसे सूर्यादि जड़पदार्थोंके क्रिया विशेषसे ईश्वरका भी अनुमान जानिये और जैसे पुत्रने पिताको नहीं देखा दूसरेने देखा है पर उसका अनुमान हम दूसरोंको पिताकी पैदाइश प्रत्यक्ष करके कराते हैं इसी प्रकार हमने परमात्माका प्रत्यक्ष नहीं किया पर घटपटादि पदार्थ बिना किसी कर्त्ताके न देखकर पृथिव्यादि-का कर्त्ता ईश्वर मानते है। परमाणुकी शकलसे आपका अभिप्राय

---

१ सूर्यादिकको कार्य कहां बतलाया गया है ?

पैदाशुदाका हो तो मैं नहीं मानता। आप ईश्वरकी शकल पूछते है सो भी शकल आकृतिजन्यपदार्थकी होती है ईश्वरजन्य नहीं। जो आपने प्रश्न किये उनके सब उत्तर लिख चुके हैं। आप पिष्ट-पेषण करते हैं। मैं आपसे पूछता हूं जीवात्माकी क्या शकल है अर्थात् जैसे जीव चेतन कोई मैटीरियल शकल नहीं रखता वैसे ईश्वरजन्य न होनेसे कोई शकल नहीं रखता।

जैनमित्रमण्डलका षोडशम प्रश्नपत्र।

हमने कार्यत्व हेतुमें चार हेत्वाभास दिये थे उनका एक भी उत्तर नहि दिया गया, देशव्यतिरेक, कालव्यतिरेकका अभाव ईश्वर कर्त्ताके साथ कार्य्यकालाभावका विघातक कहाथा उसका भी आपने कुछ भी वारण नहीं किया, नाना इच्छा और एक इच्छा तथा नित्यानित्य इच्छाका भी कोई उत्तर नहीं दिया गया, कुम्भ-कार दृष्टान्तको साध्यान्तःपाती होनेसे व्याप्तिका अभाव बतलाया गया है उसका भी कुछ उत्तर नहीं दिया गया।

मेघ विद्युत् नर्मदाके पत्थर आदि पदार्थोंको विना ईश्वरके बनते देखते हैं फिर उसमें ईश्वर कर्त्ता किस प्रमाणसे सिद्ध होता है उसका भी कोई उत्तर नहीं दिया गया, ईश्वरका सृष्टि बनाना स्वभाव है या प्रलय करना इसका भी उत्तर नहीं दिया गया।

सांचा ईश्वरने किस उपकरणसे बनाया और क्या चींटी मच्छर सबके भिन्न २ सांचे बनाये थे या केवल मनुष्योंके, इसका कोई उत्तर नहीं दिया गया।

प्रलय कालमें जीव सकर्मा था और ईश्वर भी है तो सृष्टि क्यों न बनाई? यदि निष्कर्मा थे तो मुक्तात्मा तुल्य हुए, फिर

सृष्टि किसके लिये और क्यों रची, इसका भी कुछ उत्तर नहीं दिया गया।

ईश्वर शक्तिमान् और सर्वज्ञ है तो कूंएमें गिरते हुए पुत्रको जिसे पिता रोकता है ईश्वरने क्यों अनर्थकारी पदार्थोंको बना डाला इत्यादि। ईश्वरकी इच्छा नहीं घटती तो आपने फिर द्रष्टान्त उसे क्यों बनाया? खेद है दृष्टान्त देते समय आप स्ववचन-बाधित दोपसे दोषी बन जाते हैं।

साईंस जड़ पदार्थोंमें अनन्त शक्ति स्वीकार करती है जैसा कि हम देखते भी हैं।

शक्तिका लक्षण क्या सूक्ष्म अवस्था है? यदि सूक्ष्म अवस्था ही शक्ति हो जैसे कि परमाणुमें तो स्कन्धमें भी वही शक्ति होनी चाहिये परन्तु स्कंध स्थूल है। यदि परमाणुकी शक्ति नहीं है तो द्व्यणुकादि कार्य्योंमें शक्ति नहीं आसक्ती, सारा सिद्धान्त ही आपका विघात होता है। जीवात्माकी शक्ति हम अपने २ शरीरके बराबर मानते ही हैं अन्यथा सारे शरीरमें क्यों पीड़ा होती है?

यदि ईश्वर ही कर्मफल देता है तो एक पशुका बध जब कोई करता है तो वह दोपी और धर्मात्माओं द्वारा नीच क्यों बनाया जाता है क्योंकि पशुका तो ईश्वरने कर्मोंका फल दिलाया है ईश्वर ही दोषी ठहरना चाहिये उसीने उस बाधकसे बध कराया है।

सूर्यादिकी क्रियासे ईश्वर कर्तृता यदि मानी जाय तो व्यधिकरण हेत्वाभास है जैसे किसीने कहा कि हवेली काली है क्योंकि ध्वजा उड़ रही है।

आर्य कुमारसभाका षोडशम उत्तर पत्र ।

प्रलयमें जीव कर्म सहित होने पर भी सुषुप्ति अवस्थाकी न्याई किसी विशेष कार्य्यकर नहीं होते सो ईश्वरका नियम है इसलिये आप यह विपर्यांतर सञ्चार सामान्य बुद्धिमान आदिका विकल्प ठीक नहीं क्योंकि बुद्धिमत्कर्तृत्त्वकी व्याप्ति कार्यत्त्वके सिर पर है और यही अनुमान उसकी विशेपता पदार्थोंके आकृतिभेदसे सिद्ध करती है ।

कर्म जड़ होनेसे स्वयं फल देनेमें असमर्थ हैं । राजसेवाकी न्याई इस लिये अवश्य वह सर्वज्ञ चेतनसापेक्ष है ।

जीवात्माका ईश्वरत्त्वस्वभाव है तो बंधा हुआ क्यों है ? जो कर्मोंवाला है वह तो अनीश्वर है फिर ईश्वर कैसे होगा ?

सब हेत्वाभासोंका खण्डन करदिया[1] पढ़ने वाले देखलेंगे, ईश्वर रागी होनेसे पहिले बद्ध होगा फिर ईश्वर कैसे रहेगा, आपका यह यथन सर्वथा निर्मूल सिद्ध होता है ।

शास्त्रार्थ सर्वज्ञ सिद्धि ।

(ता० २८-२९-३०)

(**विशेष**-प्रिय सज्जनो ! सर्वज्ञ सिद्धिके विषयमें जो प्रश्न पत्र आर्य समाजकी तरफसे किये गये हैं उनका अवलोकन आप करेंगे ही । ये प्रश्न पत्र प्रायः सब ही घरसे लिखकर लाये गये हैं इसीसे इनके (प्रत्येक प्रश्नके) आदि और अन्तके वाक्य असम्बद्ध और अपूर्ण हैं ।

---

१ खण्डन कर दिया, यह शब्द मात्र ही समाजी पण्डितजीने रट लिया है ! युक्तिका कुछ काम नहि !

आर्य कुमार सभाका प्रथम प्रश्नपत्र।

प्रिय पाठको! तथा मान्य सभापते!

'जैनोंके तीर्थंकर सर्वज्ञ हैं वा नहीं' इसमें विधिकोटि जैनोंकी तथा निषेधकोटि हम वैदिकोंकी है, सो प्रमाणसे वस्तुका निर्णय होता है। जैनोंका पक्ष है कि 'तीर्थंकर सर्वज्ञ शरीरधारी होते हैं' सो यह प्रतिज्ञा मात्र है, इसमें कोई प्रमाण नहीं, प्रत्यक्ष इसलिये नहीं कि वह किसीको नहीं दीखते, अर्थात् शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध यह क्रमसे श्रोत्रादि बाह्य इन्द्रियोंके विषय यदि जैन तीर्थंकर शब्दादि रूप होता, हम आप सबकी बाह्य इन्द्रियका विषय होता, और मन रूप अंतरिन्द्रियके विषय सुखदु:खादि होते हैं सो तीर्थंकर प्रत्येक आत्म-वृत्ति सुख दु:खादि रूप न होनेसे किसीके मनका विषय नहीं; क्योंकि स्वात्मवृत्ति धर्मोंका ही स्वमनसे प्रत्यक्ष होता है। अभिप्राय यह है कि यदि बाह्य अन्तरिन्द्रियों द्वारा सब लोग शब्दादिकी न्याईं जैन तीर्थंकरोंको विषय कर लेते तो इसमें विवाद ही न होता।

यदि कोई जैन कहे कि हमारे पूर्वजोंने तीर्थंकरोंको प्रत्यक्ष-से देखा है अत: वह प्रमाण सिद्ध है या इसलिये ठीक नहीं कि आपके पूर्वजोंका देखना सबके लिये कैसे प्रमाण हो सक्ता है वैसे। तो मैं भी कह सक्ता हूं कि मेरे पूर्वजोंने सर्वज्ञ तीर्थंकरोंको नहीं देखा इसलिये अप्रमाण है। दूसरी बात यह है कि सर्वज्ञको तीर्थंकर जाननेवाले आपके पूर्वज सर्वज्ञ थे या असर्वज्ञ? प्रथम पक्ष इसलिये अयुक्त है कि मेरे आपके मध्य अबतक सर्वज्ञ तीर्थंकर सिद्ध नहीं हुए, उसीमें तो विचार कर रहे हैं, फिर विचार्य साध्य विषय स्वसिद्धि-में स्वयं कैसे प्रमाण हो सक्ता है? यदि कहो कि सर्वज्ञ तीर्थंकरोंके

देखनेवाले हमारे पूर्वज असर्वज्ञ थे सो उन असर्वज्ञ अनाप्तोंका वचन कैसे प्रमाण कर लिया जाय? सम्भव है कि असर्वज्ञ होनेसे मृगतृष्णाकी न्याईं आपके पूर्वजोंको मिथ्या बुद्धि उत्पन्न हुई हो, "स्वयमसिद्धः कथं परान् साधयति" यह न्याय आपपर घटेगा, इस प्रकार जैन तीर्थंकरोंकी सर्वज्ञता बाह्य लौकिक प्रत्यक्षसे असिद्ध है। यदि आप कहें कि योगज धर्मसे तीर्थंकरोंकी सर्वज्ञता सिद्ध है तो वह पक्ष भी योगज धर्मवाले योगी सर्वज्ञ हैं वा असर्वज्ञ हैं? इत्यादि विकल्पोंसे पूर्ववत् दूषित जानना चाहिये। अभिप्राय यह है कि किसके योगसे योगीको योगज धर्मकी प्राप्ति हुई।

जिससे उसने सर्वज्ञ तीर्थंकरोंको जाना ईश्वरके योगसे या अनीश्वरके योगसे? अबतक आप अपने ईश्वरकी सिद्धिमें ही तो प्रवृत्त हो रहे हैं, असिद्ध ईश्वरका योग कैसे माना जाय, अनीश्वरके योगसे योगीको योगज धर्म होता है। यह किसीका भी मन्तव्य नहीं, इसमें भी नाना विकल्प हो सक्ते हैं। ग्रन्थ गौरव भयसे दिङ् मात्र जतलाया गया, इस रीतिसे कोई प्रत्यक्ष भी जैन तीर्थंकरोंकी सर्वज्ञताका साधक नहीं। जब प्रत्यक्ष ही नहीं तो उसका अनुमान कैसे? क्योंकि लिङ्ग लिङ्गीके साहचर्य ज्ञानसे उत्तर अनुमान हो सक्ता है।

जो जैन तीर्थंकरोंकी सर्वज्ञतामें उक्त रीतिसे कोई लिङ्ग प्रत्यक्ष नहीं जो तीर्थंकरोंकी सर्वज्ञताका साधक हो सके। यदि आप अपने आग्रह वश होकर कहें कि उपमानसे तीर्थंकर सर्वज्ञकी सिद्धि हो सक्ती है, इसका उत्तर यह है कि 'यथा गोस्तथा गवयः' यहां पर जैसे गो गत सादृश्य ज्ञानसे गवयमें उपमिति होती है वैसे "यथा अमुक सर्वज्ञः तथा जैन तीर्थंकराः सर्वज्ञाः" इस प्रकार सर्वज्ञका

सादृश्य ज्ञान कोई नहीं पाया जाता क्योंकि दूसरोंके सर्वज्ञको आप मानते नहीं और अपने सर्वज्ञ अभी सिद्ध नहीं कर चुके, अतएव शब्द प्रमाणसे भी तीर्थंकर सर्वज्ञ सिद्ध नहीं क्योंकि शब्द सिद्ध हो जाय तो सर्वज्ञकी सिद्धि हो और आपका सर्वज्ञ सिद्ध होवे तो शब्द प्रमाण बन सके और आपके तीर्थंकर दूसरोंके माने हुए शब्द प्रमाणके विषय भी नहीं हो सक्ते और नाहीं आपका यह मन्तव्य है, इस प्रकार किसी प्रमाणका विषय न होनेसे जैनोंके तीर्थंकरोंकी सर्वज्ञता सर्वथा निर्मूल जाननी चाहिये ।

और जो जैन लोग अपने तीर्थंकरोंकी सर्वज्ञता सिद्ध करनेके लिये यों अनुमानका प्रयोग करते हैं कि ' कश्चिदात्मा सकल पदार्थ साक्षात्कारी तद्ग्रहणस्वभावत्वे सति प्रक्षीण प्रतिबन्धप्रत्ययत्वात् अपगततिमिर रूप साक्षात्कारी लोचनविज्ञानवत् ' जिस प्रकार प्रतिबन्धसे रहित हुआ रूपका साक्षात् करनेवाला चाक्षुप ज्ञान होता है वैसे ही प्रकाश स्वभाव होनेसे कर्ममल प्रतिबन्धके दूर होने पर कोई आत्मा सब पदार्थोंके ज्ञानवाला है, क्योंकि जो जिसके प्रकाश स्वभाववाला होता है वह प्रतिबन्ध रहित होने पर उसका साक्षात्कार करनेवाला होता है यह व्याप्ति है ।

इसमें प्रष्टव्य यह यह है कि पक्षभूत आत्मासे आत्मसामान्यका ग्रहण है या किसी विशेष आत्माका ? प्रथम पक्ष मानो तो आत्मत्व सामान्यके अन्तर्गत हम आप सब ही सर्वज्ञ हो जाने चाहिये पर हममेंसे कोई भी सर्वज्ञ नहीं । यदि कहो कि किसी विशेष आत्माको पक्ष मानते हैं तो उत्तर दें कि वह विशेषता कैसी ? आत्म सामान्यसे सब आत्माका ग्रहण होने पर भी सर्वज्ञत्व तथा अल्पज्ञत्व धर्म ही उनके परस्पर विशेष—

जैन मित्रमण्डलका प्रथम उत्तरपत्र ।

आपने कहा है कि तीर्थंकर सर्वज्ञका प्रत्यक्ष नहीं होता सो यह कथन ठीक नहीं, क्योंकि तीर्थंकर सर्वज्ञका इस समय यद्यपि प्रत्यक्ष नहीं होता हो परन्तु पूर्वजोंको अवश्य प्रत्यक्ष था, जैसे कि मृत गोखले आदि पुरुषोंका आज प्रत्यक्ष नहीं है तथापि पहिले अवश्य था। दूसरे तीर्थंकर सर्वज्ञका प्रत्यक्ष नहीं होता है यह आप कौनसे प्रत्यक्षसे कहते हैं; इन्द्रिय प्रत्यक्षसे या अतीन्द्रिय प्रत्यक्षसे? यदि इन्द्रिय प्रत्यक्षसे कहते हैं तो आपका इन्द्रिय ज्ञान सन्निकृष्ट पदार्थोंमें ही होता है फिर सर्व देशकालमें सर्वज्ञ निषेधक आपका इन्द्रिय प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है? यदि होसकता है तो जिस प्रत्यक्ष-से आप सर्वज्ञका अभाव सर्व देशकालमें देख रहे हैं इसलिये आप ही सर्व द्रष्टा सर्वज्ञकी सिद्धि स्वीकार करते हैं। यदि अतीन्द्रिय प्रत्यक्षसे कहते हैं तो असिद्ध ही है। इसलिये प्रत्यक्षसे आप सर्वज्ञ-का निषेध कर ही नहीं सक्ते।

सर्वज्ञ अनुमान प्रमाणसे सिद्ध होता है "कश्चित् आत्मा सकल पदार्थ साक्षात्कारी तद्ग्रहण स्वभात्वे सति प्रक्षीणप्रतीबन्ध प्रत्यय-त्वात् यो यो यद्ग्रहण स्वभावत्वे सति प्रक्षीण प्रतिबन्ध प्रत्ययवान् स सकल पदार्थ साक्षात्कारी यथा अपगत तिमिरलोचन रूप साक्षात् कारी। जिस प्रकार अपगततिमिरलोचन रूपका प्रकाश करता है उसी प्रकार कोई आत्मा भी सकल पदार्थका जाननेवाला है।

तीर्थंकर सुख स्वरूप ज्ञान स्वरूप हैं, आवरण और दोषोंकी सर्वथा हानि होनेसे वे पूर्ण ज्ञान प्रकट कर लेते हैं। जिस प्रकार क्रमसे हम लोगोंमें भी ज्ञान बढ़ता जाता है और बढ़ते २ किसी आत्मामें

पूर्ण ज्ञानका प्रकर्ष हो जाता है जैसे कि परिमाणका आकाशमें। इसलिये तीर्थंकरमें सर्वज्ञता अनुमान सिद्ध है और अर्थापत्तिसे भी तीर्थंकरकी सर्वज्ञता सिद्ध होती है। बिना तीर्थंकर सर्वज्ञके धर्मादिक अतीन्द्रिय पदार्थोंका उपदेश बन नहीं सक्ता है। इसलिये प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे तीर्थंकर सर्वज्ञ अच्छी तरह सिद्ध होते हैं। उनका निषेधक कोई प्रमाण नहीं हो सकता है।

आर्यकुमार सभाका द्वितीय प्रश्न पत्र।

हां सक्ते हैं, परन्तु उक्त सर्वज्ञता अबतक विवादास्पद है आप सिद्ध नहीं कर सके। इस रीतिसे प्रथम तो आपके पक्षका ही विवेचन नहीं हो सक्ता, यदि आप दुराग्रहके कारण कहें कि 'कश्चित्' पद ही विशेषण रूप हुआ किसी विशेष आत्माको बोधन कराता है सो भी ठीक नहीं, जिस विशेषको बोधन कराता है वह क्या है?

यह आप अब तक सिद्ध ही नहीं कर सके। सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करने पर इसमें भी अनेक दोष आते हैं। अब आपके साध्यकी बात सुनिये, सकल पदार्थ साक्षात्कारित्व रूप साध्य समान रूपसे मानते हैं अथवा विशेष रूपसे मानते हैं? प्रथम पक्षमें प्रमेयत्वेन अस्मदादिको सब पदार्थोंका सामान्य ज्ञान होनेसे सर्वज्ञताकी आपत्ति होगी।

दूसरे पक्षमें पूर्ववत् दोषोंकी आपत्ति बनी रहेगी जिनका विशेष मेरे बनाए 'स्याद्वादध्वांतमार्तण्ड' नामक संस्कृत ग्रन्थमें है, अस्तु यदि आपके इस अनुमानपर विकल्प लिखता जाऊं तो एक बड़ा पोथा बन जायगा। अब आपके हेतुपर विचार करता हूं—संक्षेपसे।

प्रक्षीण प्रतिबन्ध प्रत्ययत्वात् आपके इस हेतुका साध्यांश दृष्टान्तसे बतलाएं क्या है, अर्थात् सब पदार्थोंका साक्षात्कार करना, यह जो आपके साध्यका स्वरूप है, वह रूपके प्रकाशक चाक्षुप ज्ञानमें नहीं पाया जाता, चाक्षुप ज्ञानमें तो रूप वा अधिकाधिक रूप वाले द्रव्यका प्रकाश होता है उसमें भी एक कालमें सबका नहीं, यह सर्व तन्त्रसम्मत बात है परन्तु आप उक्त हेतुसे तीर्थंकरोंमें यावत् वस्तुके ज्ञानकी सिद्धि करते हैं जो दृष्टान्तभूत चाक्षुपज्ञानमें नहीं पाई जाती।

इसलिये तीर्थंकरोंको सर्वज्ञ सिद्धि करनेके लिये दिया हुआ उक्त हेतु साध्य विकल होनेसे दूपित=हेत्वाभास है और शेष आनेवाले दोषोंकी सूक्ष्म विवेचनाको छोड़कर दिखलाता हूं कि यह अनुसत्प्रति पक्ष भी है। क्योंकि इसके साध्याभावका साधक विरोधी हेतु समबल पाया जाता है जैसा कि 'जैन तीर्थंकराः सर्वज्ञा न भवितुमर्हन्ति शरीर धारित्वात् रथ्या पुरुषवत्' जिस प्रकार गली कूचोंमें फिरनेवाले पुरुष शरीरधारी होनेसे सर्वज्ञ नहीं होते वैसे ही जैनोंके तीर्थंकर भी सर्वज्ञ नहीं, क्योंकि जो २ शरीरधारी होता है वह वह सर्वज्ञ नहीं।

जैसे कि हम आप सभी शरीरधारी होनेसे सर्वज्ञ 'यत्र यत्र शरीरधारित्वं तत्र तत्र सर्वज्ञताभावः' यह व्याप्ति रथ्या पुरुषमें उभय वादि सम्मत (?) स्पष्ट सिद्ध है।

इस जैनोंके ईश्वरकी सर्वज्ञताके अभाव साधक अनुमानमें प्रत्यक्ष बाध भी नहीं, क्योंकि अल्पज्ञता सहचारी शरीरधारीपना प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध है, अतएव यह हेतु स्वरूपासिद्ध भी नहीं और

इसमें अन्य प्रकार दूसरा भी बाध नहीं आसक्ता, क्योंकि हमारे शब्द प्रमाणमें तो किसी शरीरधारीको सर्वज्ञ माना नहीं।

जैन मित्रमण्डलका द्वितीय उत्तरपत्र।

जो जिसका साधक नहीं वह उसका बाधक भी नहीं हो सक्ता है। प्रत्यक्ष प्रमाणसे परमाणु आकाश ईश्वरकी सिद्धि नहीं होती इसलिये प्रत्यक्ष उनका बाधक भी नहीं हो सक्ता है। इसी प्रकार प्रत्यक्षसे सर्वज्ञका निषेध भी नहीं हो सक्ता है। जो स्वयं सर्वज्ञ नहीं है वह सर्वज्ञको नहीं जान सक्ता है यह कथन मिथ्या है, क्योंकि जो स्वयं सिद्ध नहीं है वह सिद्धको जानता ही है ईश्वर नहीं होकर भी ईश्वरवादी ईश्वरके सद्भावको कहते ही हैं। तीर्थंकर सर्वज्ञ हैं इस विषयमें दूसरा अनुमान लीजियें।

सूक्ष्म अन्तरित दूरार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं अनुमेय होनेसे जो जो अनुमेय होते हैं वे किसी न किसीके प्रत्यक्ष अवश्य होते हैं, जैसे कि अग्नि अग्नि, अनुमेय है इसलिये वह किसीके प्रत्यक्ष ज्ञान विषयी भूत है, इस अनुमानसे तीर्थंकरमें सर्वज्ञता अच्छी तरह सिद्ध होजाती है। आप इस अनुमानमें बाधा दो, तभी तीर्थंकरमें सर्वज्ञताका निषेध कर सक्ते हैं, अन्यथा नहीं।

हमने जो चक्षुका दृष्टान्त दिया है वह इसी अंशमें है कि वह तिमिरादिके हरने पर पदार्थका स्पष्ट ग्रहण करता है, इसी प्रकार दोषावरणके हरने पर तीर्थंकर भी सकल पदार्थके ग्राहक हैं, दृष्टान्त प्रतिबन्धमें है।

हम जो अनुमान दे चुके हैं कि दोष और आवरणकी हानि हम

लोगोंमें क्रमसे पाई जाती है। प्रकृष्यमाण हानि होनेसे। जो जो प्रकृष्यमाण हानि होती है वह कहीं पर निश्शेषतासे हो जाती है, जिस प्रकार सोनेको अग्निमें देनेसे उसके किट्टिकालिमादि दोष क्रमसे घटते हुए पूर्णतया दूर हो जाते हैं इसी प्रकार तीर्थंकर सर्वज्ञ दोषावरणकी पूर्णतया हानि होजाती है। इस अनुमानसे कोई आत्मा विशेष सर्वज्ञ सिद्ध होजाता है इस अनुमानमें बाधा दीजिये, अन्यथा सद्धेतु पूर्वक सर्वज्ञ सिद्ध हो ही जाता है। तीर्थंकर सर्वज्ञ एक देशीय हैं। एक देशमें रहकर भी वह समग्र वस्तुओंका ज्ञान करता हैं।

परिच्छिन्नत्व योगियोंमें है, परन्तु वह वहां सर्वज्ञत्वाभाव नहीं है इसलिये आपका परिच्छिन्न हेतु बाधित भी है। क्योंकि अनुमान बाधित पक्षके बादमें बोला गया है, यह हेतु सत्प्रतिपक्ष ग्रस्त भी है "तीर्थंकराः सर्वज्ञाः निर्दोषत्वात्" जो जो सर्वज्ञ नहीं होता वह निर्दोष भी नहीं होता, जैसे कि गलीमें जाता हुआ संसारी आदमी। हमारे सर्वज्ञ सशरीर और अशरीर दोनो ही प्रकार हैं जीवन्मुक्तावस्थामें सशरीर हैं और सिद्धावस्थामें अशरीर हैं।

शरीर सर्वज्ञताका बाधक नहीं है—

आर्यकुमार सभाका तृतीय प्रश्नपत्र।

और आपका आगम सर्वज्ञताकी सिद्धि न होनेसे प्रमाण रूप सिद्ध नहीं हुआ। यही रीति शेष बाँधोंमें जान लेनी चाहिये और यह अनुमान व्यभिचारी भी नहीं, क्योंकि साध्यके अभाव वालेमें नहीं जाता प्रत्युत सर्वज्ञताके अभावको छोड़कर शरीर धारित्व नहीं रहता, इस प्रकार बिचार करनेसे मेरे इस तीर्थंकरोंके अभाव साधक

अनुमानमें कोई दोष नहीं। यदि यह कहा जाय कि तुम्हारे अनुमान-में 'कर्ममलवत्व' उपाधि है अर्थात् जहां २ कर्म मल सहित शरीरधारी-पना वहां २ सर्वज्ञताका अभाव है। तीर्थंकरोंमें कर्ममल न होनेसे शरीर होनेपर भी सर्वज्ञताका अभाव नहीं, यह कथन भी आपका ठीक नहीं। क्योंकि आपके ऋषभदेव भगवानमें कर्म मल भी पाया जाता है। जब ऋषभदेवजीने स्त्रियोंको चौंसठ कला दिखलाई, नाचना गाना. बजाना पुतेला बनाना दंभ लीला संचरणकम्म क्रिया आदि तो भी वह कर्म मलसे कैसे रहित हो सक्ते हैं, अमानुमानमपि—यहां अनुमान भी हो सक्ता है। श्री ऋषभदेव व तीर्थंकर कर्ममल सहित काम क्रिया नृत गीतादि शिक्षण करत्वात् तादृश पुरुषवत् जिस प्रकार साधारण नृत्यादि सिखलाने वाले पुरुष कर्ममलसहित हैं वैसे ही श्री ऋषभदेव भगवान जानने चाहिये। जो इस प्रकार कर्ममल सहित तथा शरीरधारी हो कदापि सर्वज्ञ नहीं इस रीति ज्यों २ जैन सिद्धान्तकी परीक्षा करें त्यों २ सिकता कूपकी न्याईं विशीर्ण होता दीखता है। आपने जो कथन किया है कि अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष आपके सिद्ध नहीं, उसका उत्तर यह है कि आपने भी कोई अती-न्द्रिय प्रत्यक्षको सिद्ध नहीं केवल प्रतिज्ञा वचनसे ही कह दिया कि अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष भी सर्वज्ञकी विषयताका बाधक नहीं, और यह आपका जो कथन सर्वज्ञ होवे वही सर्वज्ञका निषेध कर सक्ता है नाम मात्र है क्योंकि वस्तुकी सिद्धि, असिद्धि प्रमाणसे हो सक्ती, सो आपने सर्वज्ञकी सिद्धिमें प्रमाण कथन नहीं किया और जो आपने गोखलेके दृष्टान्तसे कहा कि जैसे उसको प्रत्यक्षसे जानने वाले पूर्वज थे यह वैसे ही पूर्वजों तीर्थंकरोंकी सर्वज्ञताको जाना है

उसका विचार यह है कि वह आपके पूर्वज कौन हैं ? आप्त या अनाप्त ? आप्त सर्वज्ञ हैं या अल्पज्ञ हैं ? प्रथम पक्ष अबतक सर्वज्ञकी सिद्धि न होनेसे ठीक नहीं। अल्पज्ञ मानो तो उनका वचन भ्रांति रहित सर्वथा कैसे माना जाय ? आप अतीन्द्रिय प्रमाणका लक्षण करके अपने पक्षमें सङ्गत बनाकर दिखलावें। आप लिख चुके हैं कि तीर्थंकरोंमें पराधीनता भी अब सुख स्वरूप आवरण दोष रहित, पूर्ण ज्ञान भी प्रकट कर लेते इसलिये तीर्थंकरमें सर्व शक्ति अनुमान सिद्ध है यह कथन आपका परस्पर विरुद्ध है। जो पराधीन होता वह सुख स्वरूप पूर्ण ज्ञानवाला नहीं होता जैसा कि रथ्या पुरुष, और जो आपने तीर्थंकरोंको एक देशी मानकर सर्वज्ञ कथन किया है इसमें कोई दृष्टान्त नहीं दिया जो एक देशी होवे और सर्वज्ञ भी होवे उस द्वारा आपके तीर्थंकर सर्वज्ञ सिद्ध किये जांय, और जो आपने—

जैन मित्रमण्डलका तृतीय उत्तरपत्र।

तीर्थंकराः न सर्वज्ञाः शरीरधारित्वात् यह सत्प्रतिपक्ष दोष मिथ्या है, क्योंकि शरीरधारित्व हेतु संदिग्ध विपक्ष व्यावृत्तिक है। सः श्यामः मित्र तनयत्वात् इतर मित्र पुत्रवत् इसकी तरह।

ज्ञानकी आप जीवोंमें क्रमशः वृद्धि मानते हैं या नहीं। यदि मानते हैं तो पठनपाठन करना व्यर्थ है। यदि वृद्धि मानते हैं तो कहां तक ?

तीर्थंकरके जो सुख गुणके विघातक कर्म हैं वे दूर हो गये हैं इसलिये वे सुख स्वरूप हैं। तीर्थंकर प्रकृतिकी पराधीनता सुख गुणकी विघातक नहीं है। एक कार्यकी पराधीनता दूसरे कार्यमें विघातक नहीं होसकी है।

जो चीज़ दुनियांमें एक ही होती है उसकी सिद्धिके लिये समानताकी आवश्यकता नहीं है; जैसे आपका वैदिक ईश्वर एक है, उसकी सिद्धिके लिये क्या कोई दूसरा ईश्वर आवश्यक है ?

ऋषभदेवने जो कला सिखलाई थी उसका दृष्टान्त सिद्ध साध्यता दोषमें आपको लेजाता है; क्योंकि उन्होंने गृहस्थावस्थामें ही सिखलाई थी।

जिसकी प्रकृष्यमाण हानि होती है उसकी निःशेष हानि होजाती है जैसे सोनेको अग्निमें देनेसे किट्टिकालिमादि दोष दूर हो जाते हैं इसी प्रकार तीर्थंकरके भी पूर्ण आवरण दूर हो जाते हैं। इस अनुमानमें आप क्या बाधा देते हैं ? खेद है कि हमने दो तीन अनुमान सर्वज्ञ सिद्धिमें दिये, परन्तु आप दूसरा ही विषय ले बैठते हैं; हमारे दिये हुए अनुमानोंमें कुछ भी दूषण नहीं देते इसलिये सर्वज्ञ सिद्धि अनिवार्य है अन्यथा दूषण दीजिये।

आर्य कुमार सभाका चतुर्थ प्रश्नपत्र।

सोनेके दृष्टान्तसे कहा कि धीरेधीरे मलके उतर जानेसे सोना शुद्ध होजाता है वैसे कर्ममल आवरण धीरे धीरे हटकर शुद्ध होनेसे तीर्थंकर बनता है। इसपर मैं पूछता हूं कि सोनेको शुद्ध बनानेके समान तीर्थंकरके सर्वज्ञ बनानेवाला आपके पास कौन साधन है ? विहित कर्मादिके अनुष्ठान द्वारा शुद्ध होकर तीर्थंकरोंकी सर्वज्ञता रूप बनावट मानें तो वह किसके उपदेश हैं ? सर्वज्ञ तो अबतक सिद्ध नहीं हुये जिनका उपदेश प्रमाण मानकर आत्मा

सर्वज्ञ बन जावे, अल्पज्ञका उपदेश तो प्रमाण ही नहीं। हम, सिंह न होनेपर भी सिंहको जान सके हैं यह दृष्टान्त विषम है। मैं तो पूछता कि जो आपके सर्वज्ञको जानना वह किस प्रमाणसे जानता है। और जो आप कहते हैं कि अनुमेय होनेसे सूक्ष्म दूरवर्त्ती पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं, अग्निवत् इसमें प्रष्टव्य है कि अग्न्यादि अनुमेय तो अल्पज्ञके प्रत्यक्ष सूक्ष्मवर्त्ती आप सर्वज्ञके प्रत्यक्ष मानते हैं सो बन ही नहीं सका ? क्योंकि कस्यचित् पदसे आप किसको साध्य मानते हैं, सर्वज्ञको कहें तो दृष्टान्त साध्य विकलता बनी रहेगी। अल्पज्ञ मानेंगे तो अपसिद्धान्त आवेगा और जो योगियोंके दृष्टान्तसे तीर्थंकरोंको सर्वज्ञ सिद्ध करनेकी चेष्टा की तो मैं पूंछता हूं कि योगी सर्वज्ञ कैसे बन गये ? धन्य हो पंडितजी आप साध्यको दृष्टान्त बना लेते हैं। आपके उक्त अनुमानसे प्रत्यक्ष बाधा स्पष्ट है क्योंकि तीर्थंकर प्रत्यक्षसे सिद्ध नहीं अतएव साध्य वैकल्य ज्योंका त्यों पड़ा है। आपने मेरे इस हेत्वाभासका कोई उत्तर नहीं दिया, जो आपने सूर्यके समान तीर्थंकरको एक मानकर समानताकी आवश्यकताका अभाव स्वीकार किया सो न्यायकी शैलीसे बाह्य है। समानता न माननेसे आपका कोई दृष्टान्त न बनेंगे, फिर अनुमानसे कैसे सिद्ध करोगे ?

जैन मित्र मण्डलका चतुर्थ उत्तरपत्र।

आपने कहा कि विशेष आत्माको अनुमानसे सिद्ध करते हो या सामान्य आत्माको। हम विशेष आत्माको सर्वज्ञ मानते हैं। जिस आत्मामें दोष आवरणकी सर्वथा हानि होजाती है वह आत्मा सर्वज्ञ है।

शरीरधारी सर्वज्ञ नहीं-होता है इस विषयमें हम पहिले ही ईश्वरका दृष्टान्त दे चुके हैं। महाराज! शरीरधारी जो होता है वह इंग्लैंडका राजा नहीं हो सकता, जैसे हम सब। बतलाइये कि एक इंग्लैंडके राजाको किस प्रमाणसे आप सिद्ध करते हैं?

आपने कहा कि ईश्वर कर्मोंका बनाया हुआ है सो महाराज ज़रा समझकर ही लिखिये, हमने कर्मोंके अभावसे सर्वज्ञ माना है न कि कर्मोंके सद्भावसे, प्रकृष्यमाण हानि दोपावरणकी हमने बतलाई थी उसका कोई उत्तर आप नहीं देते हैं। कर्म पौद्गलिक पदार्थ है वह पुद्गलकी पर्य्याय है। आत्माके कषायवश वे पुद्गल कर्मरूप परिणत हो जाते हैं और आत्माको परतंत्र कर देते हैं। कर्मसे कषाय पैदा होती है और कषायसे पुनः कर्म पैदा होते हैं। जब कर्मबन्ध करनेवाला कषाय (रागद्वेष) घटने लगता है त्यों २ कर्म भी आत्मासे जुदा होने लगता है।

जब आत्मामें सर्वथा कषाय नहीं रहती तब आत्माका स्वाभाविक गुण पूर्ण प्रकट हो जाता है। जहां पर गुणोंकी पूर्णता है वही सर्वज्ञ है। रागद्वेष वश पुद्गल ही कर्मरूप बनजाता है जैसे कि जठराग्निसे दूधका रस बन जाता है। खेद है आप कर्म शब्दका अर्थ ही नहीं समझते।

जैसे सोना अग्निसे शुद्ध हो जाता है वैसे ही आत्मा तपश्चरण, दीक्षा, ध्यान आदिसे शुद्ध हो जाता है, वही योगी है।

ज्ञानकी अवधि आपने नहीं बतलाई सो पहिले अवधि बतलाइये।

जीवोंको आप अल्प मानते हैं वह अल्पज्ञता स्वाभाविक है या वैभाविक? उत्तर दीजिये।

सोनेका दृष्टान्त मलक्षयमें दिया गया है न कि पुनः कर्ममल शामिल हो जानेमें।

आर्य कुमार सभाका पञ्चम प्रश्नपत्र।

और जो आपने शरीरधारित्व हेतुको मित्रातनयत्वात् इसके समान शरीरधारित्व हेतुके सन्दिग्ध विपक्ष व्यावृत्तिक कथन किया सो केवल प्रतारणार्थ है, क्योंकि सब शरीरधारि 'सर्वज्ञ' नहीं यह मेरे दिये रथ्या पुरुषके दृष्टान्तसे स्पष्ट है। भला एक भी तो शरीरधारी अल्पज्ञसे सर्वज्ञ दिखलावें? जीवोंके ज्ञान क्रमशः २ वृद्धि होनेपर परिमित वृद्धि ही होसकी है अपरिमित नहीं, क्योंकि वह परिच्छिन्न हैं। चाहे कोई प्रोफेसर कितना ही विद्वान होजाय अन्ततः उसका विज्ञान अपरिमित कदापि नहीं पाया जाता। ऋषभदेवजीके विषयमें आपने कोई अपने ग्रन्थसे प्रमाण नहीं दिया कि उन्होंने गृहस्थ कालमें स्त्रियोंको काम कला आदि सिखलाया, तीर्थंकरत्व कालमें नहीं। ऐसा मानते तो भी यह कर्म उनका प्रशान्ति नहीं, पर विना प्रमाण ही आप कथन करते जाते हैं। मैं बार २ पूँछता हूं कि तपश्चरणसे जो आत्मा सर्वज्ञ बनता है वह तपश्चरण किसने उपदेश किया? इसका उत्तर दीजिये। पं.जी और कुछका कुछ बोलते हैं। मैंने कर्म किसने बनाया यह नहीं पूंछा किन्तु ऐसे कर्मोंका किसने उपदेश किया पूछा है उसका उत्तर आपसे अबतक नहीं बना. जीवोंके ज्ञानकी अवधिका उत्तर सुनिये। जीवात्मा कहां तक उन्नति करता है वहां तक उसकी मुक्ति हो, जीवोंपर वह सर्वज्ञ नहीं होता बहुज्ञ होजाता है।

जैन मित्र मण्डलका पञ्चम उत्तर पत्र।

शरीरत्वकी अल्पज्ञताके साथ व्याप्ति नहीं है। आपका शरीरत्व हेतु सन्दिग्ध व्यभिचारी है। इस विषयमें पहिले कहा जाचुका है। और इंग्लेण्डके राजाका दृष्टान्त भी दिया जाचुका है। पिष्टपेषण व्यर्थ है। ज्ञानके विषयमें तो आपने पूरी गोलमालकी है। आप वृद्धि स्वीकार करते हुए बहुज्ञ बतलाते हैं। क्या महाराज बहुज्ञका क्या अर्थ ? बहुतका जाननेवाला, सो क्या बहुतसे अल्पज्ञ लेना या सर्वज्ञ। यदि अल्पज्ञ होता है तो पहलेसे वृद्धि बढ़ रही है वह आगे वृद्धि किस कारणसे रुक जाती है ? यदि नहीं रुकती तो सर्वज्ञ स्वयं सिद्ध है। सर्वज्ञता स्वभाविक है यह नष्ट नहीं होती किन्तु कर्मोंसे रुकी हुई है, जैसे आवरकसे दीपककी ज्योति। कर्म कषायसे होते हैं यह पहले कहा गया है। अल्पज्ञता जीवका स्वभाव है या विभाव इसका कोई उत्तर नहीं दिया गया। आंखका दृष्टान्त तिमिरापहरण होनेपर रूपके प्रकाशमें है वह घटित ही है। हमने बीजाङ्कुरका सम्बन्ध कर्म और रागद्वेषके साथ कहा था न कि सर्वज्ञ सन्ततिके साथ। संसार अनादि है इसलिये सर्वज्ञ परिपाटी भी अनादि है, अन्ध परम्परा सर्वज्ञ न माननेवालोंमें ही है न कि सर्वज्ञ माननेवालोंमें। ऋषभदेवने गृहस्थ दशामें नृत्यकलाका उपदेश दिया है इस विषयमें आदिपुराणको देखिये। कर्माभाव कषायोंके हटनेसे होता है। मुक्तावस्थामें ज्ञान मानते हैं वा नहीं ? यदि मानते हैं तो कितना ? यदि नहीं मानते तो मुक्तावस्थाका स्वरूप क्या ?

आर्यकुमार सभाका षष्ठ प्रश्न पत्र ।

हमारे मतमें जीवोंकी अल्पज्ञता स्वाभाविक धर्म है इसके विषयमें लिख चुका हूं। आप जिस विशेष आत्माको सर्वज्ञभावता जिसके आवरणकी हानि होजाती है यह प्रतिज्ञा अवतक सिद्ध न होनेसे मान्य नहीं। शरीरधारी सर्वज्ञको प्रलयकाल तक भी आप सर्वज्ञ दृष्टान्त द्वारा सिद्ध नहीं कर सक्के कर्माभावसे सर्वज्ञतामें तो प्रश्न किया, किसके उपदेश किये साधनोंसे कर्माभाव होता है, सर्वज्ञके तो बन नहीं सक्के क्योंकि उसकी अबतक सिद्धि नहीं हुई। आत्माका स्वाभाविक गुण सर्वज्ञताको लिखते हो तो जैसे स्वाभाविक सर्वज्ञ आत्मा कर्म मलसे बद्ध हो गया तो सम्भव है कि तीर्थंकर सर्वज्ञ पुनः बन्धनमें आजावे तो घटच कुट्यां प्रभातां (?)की न्याई आपके सर्वज्ञ ईश्वरकी पोलपाल बनी रही और कर्म पुद्गलके विषयमें आपने कथा ही कथा रट दीं। हमने पूछा था कि वह साधन किसके उपदेश किये हुए हैं। ऋषभदेवजीने गृहस्थावस्थामें कर्म कला सिखलाई इसमें महापुराणका पाठ पढ़के सुना दीजिये ताकि हमारा सन्तोष हो जावे। ज्ञानावर्णीय कर्म आत्माका स्वाभाविक है वा वैभाविक उत्तर दीजिये। इङ्गलैण्ड एक ससीम जगह है जहां एक समयमें दो राजा नहीं हो सक्के। अलग २ समयमें अलग २ राजा हुए और आगे होंगे भी। और इस वक्त भी मौजूद हैं। हम जैसा मनुष्य ही है सर्वज्ञ नहीं इसलिये आपका सर्वज्ञतामें इङ्गलैण्डका दृष्टान्त आपकी अनभिज्ञताको प्रकट करती है क्योंकि सर्वज्ञतामें देशकालका बन्धन नहीं हो सक्ता।

जैन मित्रमण्डलका षष्ठ उत्तरपत्र।

यदि शरीरधारी और ज्ञान विशेषताका विरोध होता तो बच्चेके ज्ञानमें दूषण आता। बच्चा शरीरधारी है, परन्तु उसकी वृद्धिमें ज्ञानकी वृद्धि होती जाती है। यदि शरीरधारित्व सर्वज्ञताका बाधक हो तो कहना चाहिये कि वह अल्पज्ञताका साधक है परन्तु ऐसा नहीं है। यदि ऐसा होता तो बच्चेके शरीरकी वृद्धिमें ज्ञानकी न्यूनता होती परन्तु ऐसा नहीं होता, किन्तु शरीरकी वृद्धिमें ज्ञानकी वृद्धि होती है इसलिये शरिरधारीत्वके साथ सर्वज्ञताका विरोध नहीं है, यदि अल्पज्ञता स्वाभाविक है तो प्रश्न होता है कि अल्पज्ञता-स्वभाव कहां तक माना जाय, क्योंकि जो स्वभाव होता है वह तदवस्थ होता है फिर ज्ञानकी वृद्धि आप मुक्तात्मा तक क्यों मानते हैं ? अल्पज्ञता स्वाभाविक नहीं है क्योंकि ज्ञानकी वृद्धिका प्रकर्ष सर्वज्ञ तक होसक्ता है जैसेकि परमाणु परिमाणका प्रकर्ष आकाश तक होता है इसलिये जीवकी अल्पज्ञता स्वभाव नहीं कहा जासक्ता है।

तीर्थंकर जन्मावस्थामें सर्वज्ञ नहीं थे किन्तु पीछे कर्ममल हटा कर सर्वज्ञ हुए हैं। तीर्थंकर सर्वज्ञ होनेपर फिर कर्ममलसे बंध नहीं सक्ते हैं क्योंकि कर्ममलको बांधनेवाले जो कषाय भाव थे वे उनके नष्ट हो चुके हैं। कारणके अभावमें कार्य भी नहीं हो सक्ता है। इसीलिये सर्वज्ञ आर्यकी मुक्तिकी तरह मुक्तिसे लौटते नहीं।

परिच्छिन्न परिमाण होनेपर भी सर्वज्ञ होसक्ता है इसमें कोई बाधक प्रमाण नहीं है। सूर्य छोटा है परन्तु वह बहुत अधिक पदार्थोंका प्रकाशक होता है, इसी प्रकार तीर्थंकरकी आत्मा परिमाणमें

छोटी होनेपर भी त्रिजगत्‌को प्रकाशित करता है, आत्माको ज्ञानावरण कर्म ढक लेता है इस विषयमें उपदेशकी क्या आवश्यक्ता थी? कारणसे कार्य स्वयं होजाता है। सूर्यको घन पल ढक लेता है इस विषयमें उपदेशकी क्या आवश्यक्ता है?

महाशयजी! ज्ञानावरण जीवका स्वाभाविक नहीं है किन्तु पौद्गलिक है। हम कह चुके हैं कि कषायादिके हटनेसे आवरण हट जाते हैं और यही हेतु प्रक्षीण प्रतिबन्ध प्रत्ययत्व हमने दिया है, फिर खेद है कि इतनेवार विस्तारसे समझानेपर भी आप ज्ञानावरण को स्वाभावि क मानते हैं। खेद!

आर्य कुमार सभाका सप्तम प्रश्नपत्र।

१.

जो आपने जीवकी बहुज्ञता पर आक्षेप किया, इस प्रकार बहुज्ञसे आपके मतमें भी सर्वज्ञता सिद्धि होगी जीवके स्वरूपमें. सो ठीक नहीं क्योंकि 'निरतिश ज्ञानेतरोत्कृष्ट ज्ञानवत्वमेव बहुज्ञत्व मन्यामहे' मैं निरतिशय ज्ञानसे भिन्न पूर्वापेक्षया उत्कृष्ट ज्ञानवाला होना ही जीवका बहुज्ञ होना मानता हूं इसलिये मेरे पक्षमें दोष नहीं और आपके पक्षमें साध्य वैकल्पादि दोष तदवस्त है, और जो आपने शरीरके बढ़नेसे ज्ञानका बढ़ना कहा है सो तो शरीरके घटनेपर भी अर्थात् अपचय होते रहनेपर भी ज्ञान बढ़ता रहता है इसलिये शरीरका घटना बढ़ना ज्ञानके वृद्धि क्षयमें कोई साधक बाधक नहीं। छोटा सूर्य बहुत पदार्थोंका प्रकाशक रहे परन्तु सर्वत्र पूरा प्रकाश—

जो आपने कहा कि जिस प्रकार दीपकका प्रकाश फैलता है वैसे शुद्ध अवस्थामें तीर्थंकरोंका ज्ञान गुणका विकाश होनेसे सर्वज्ञताके स्वरूपमें बाधा नहीं, यह कथन अदूरदर्शिताको बोधन करता है क्योंकि दीपक परिछिन्नका प्रकाश भी अन्ततः परिच्छि देश तक ही फैलता है सर्वत्र नहीं। यही दशा सूर्यादि प्रकाशकी जाने। इस दृष्टान्तसे तो आपने तीर्थंकरोंको अल्पज्ञ ही सिद्ध कर लिया जिससे आप अप-सिद्धान्तके भागी बन गये हो। आप मुझे कोई ऐसा दृष्टान्त बतलावें जो प्रकाश स्वरूपसे परिच्छिन्न होने पर भी सर्वत्र प्रकाशको फैला देवे।

मैंने पूछा था, तपश्चर्यादि कर्मोंका किसने उपदेश किया जिसके अनुष्ठानसे आपके तीर्थंकर सर्वज्ञ बनते हैं, आपने कर्म कैसे बनता है यह कहकर वृथा ही लम्बी चौड़ी रटन्त करदी। इससे अज्ञान नाम निग्रहस्थानसे पतित हो।

जैन मित्रमण्डलका सप्तम उत्तरपत्र।

२

आपने जो अज्ञान निग्रहस्थान दिया है सो आप स्वयं ही निरनुयोज्यानुयोग निग्रहस्थानके पात्र हो।

आपने अभी कहा है कि शरीरके घटने बढ़नेसे ज्ञानका सम्बन्ध नहीं है फिर आप प्रतिज्ञा हानि निग्रह स्थानपाती होते हो। आपके कथनानुसार ही यदि शरीरित्व रहे और सर्वज्ञत्व रहे तो क्या बाधा है? ज्ञान आत्माका गुण है। ज्ञानका जीवोंमें तार-तम्य पाया जाता है। वह तारतम्य बढ़ते २ चरम सीमा तक पहुँच जाता है। इस विषयमें सूर्यका दृष्टान्त दिया था कि वह एकदेशीय

है। यदि वह तारतम्य बढ़ते २ चरम सीमातक नहीं जाता है तो बतलाइये कि आगे कौन रोकता है। आपने बहुज्ञताका लक्षण पूर्व ज्ञानसे ज्यादह बतलाया है। महाराज! पूर्व ज्ञानसे कितना ज्यादह? उसकी अवधि बतलाइये फिर उससे ज्यादह क्यों नहीं बढ़ता? और जहां वह ज्ञान पूर्णतासे रुक जाता है वहां उसे कौन रोकता, है। विना किसी कारणके ही यदि आप कथन मात्रसे कहते रहेंगे तो वह प्रमाणमें नहीं आसकता है।

यह नियम नहीं है कि विना ज्ञान देनेके ज्ञान बढ़ता ही नहीं, देखिये, नवीन आविष्कार करने वालोंको किसने उस आविष्कारका उपदेश दिया है? यदि दिया है तो वही नवीन आविष्कर्ता क्यों कहा जाता है? आपका ईश्वर सर्वज्ञ है या नहीं? यदि है तो उसका ज्ञान उसीको हो सक्ता है जो सर्वज्ञ हो, इसलिये अपर सर्वज्ञकी सिद्धि हो जाती है। यदि अपर सर्वज्ञ उसका ज्ञाता नहीं है तो आपका ईश्वर सर्वज्ञ ही नहीं बनता।

आर्य कुमार सभाका अष्टम प्रश्नपत्र।

३

और जो आपने कहा है—ऋषभदेवजीने काम क्रिया, नाचना, गाना, बजाना, आदि चौसठ कला स्त्रियोंको गृहस्थावस्थामें सिखलाई है उसमें प्रश्न है कि वह स्त्रियें उनकी विवाहिता थीं या कोई और अटमसटम थी, यह बात अपने महापुराणादि ग्रन्थोंसे स्पष्ट कर दिखलावें, यदि अपनी स्त्रियोंको सिखलाया तो भी सदाचारसे विरुद्ध आचरण सिद्ध होता है, पर स्त्रियोंके सम्बन्धसे कहें तो अत्यन्त हेयकर्म प्रतीत होता है ऐसे कर्मोंवाले तीर्थंकरोंको सर्वज्ञ ईश्वर कैसे माना जाय?

अभिप्राय यह है कि " ऋषभदेवः सर्वज्ञो न भवितुमर्हति असदाचारित्वात् परिच्छिन्नत्वात् अति विषयासक्तत्वात् तादृश प्राकृत पुरुषवत्" सदाचारी न होने, एक देशी होने तथा छः लक्ष वर्षसे भी अधिक अति विषयासक्त होनेसे प्राकृत पुरुषकी न्याई सर्वज्ञ नहीं हो सक्के। यो यस्तादृशोऽसावसौ न सर्वज्ञः यह व्याप्ति जान लेनी चाहिये।

ऋषभदेवजी तीर्थंकरके विषयमें जो प्रश्न किया उसका कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया किन्तु प्रकरणको छोड़ कर विषयान्तरका सञ्चार किया, इसी सम्बन्धमें एक और प्रश्न करता हूं। नाभि कुलकर मरुदेवी नामक भार्यासे ऋषभदेवजी उत्पन्न हुये और उसीसे ऋषभदेवजीके साथ एक सुमंगला नाम कन्या हुई। यौवनके समय ऋषभदेवजीका सुमङ्गला (जो एक माता पिताके साथ उत्पन्न होनेके कारण उनकी बहिन थी) के साथ इन्द्र इंन्द्राणीने विवाह करा दिया, दूसरी उनकी स्त्री सुनन्दा थी, उन्होने दोनोंके साथ छः लक्ष वर्षके लगभग सांसारिक विषय सुख भोगा, [१]पश्चात् सुमंगला राणीके भरत तथा ब्राह्मी यह युगल जन्मे। ऋषभदेवजीको मति, श्रुति, अवधि, यह तीनों ज्ञान गर्भमें ही थे। अब आप बतलाएं कि छः लाख वर्ष पर्यन्त विषय भोगनेवाला एक देशी अत्यन्त आसक्त कभी सर्वज्ञ ईश्वर हो सक्ता है ?

नहीं होसक्ता। कईएक स्थानोंपर उसके विद्यमानतामें भी अ-

---

१ यह कथा हमारे किसी भी ग्रन्थमें नहीं है। इस मिथ्या आक्षेप पर आर्यसमाजने उसी समय क्षमा प्रार्थना कर इस कथा विषयको वापस लेलिया (जैन मित्रमण्डल)

न्धकार पाया जाता है। और जो आपने शरीरधारीत्व हेतुको "स श्यामो मित्रतनयत्वात्" इसकी समानता कथन की है यह भी आपकी भूल है क्योंकि मित्रातनयत्व हेतुमें शाक पाक जन्यत्व उपाधि है इसलिये किसी मित्रा पुत्रके श्याम न होनेपर ही दूषित होजाता परन्तु तीर्थंकरोंकी असर्वज्ञताके साधक मेरे 'शरीरधारीत्व' हेतुमें आपने कोई उपाधि नहीं दिखलाई। उसकी 'यत्र२ शरीरधारित्वं तत्र२ असर्वज्ञत्वम्' इसी प्रकार रथ्या पुरुषादिमें स्पष्ट है, परन्तु आपने अवतक दृष्टान्भूत शरीरधारी कोई सर्वज्ञ नहीं बतलाया जिससे आपकी इष्टसिद्धि होजाय। और जो आपका यह कथन है कि जैसे परमाणुमें छोटा परिमाण चलता आकाश तक बड़े परिमाणकी समाप्ति होती वैसे ही कहीं ज्ञानकी पराकाष्ठा माननेसे तीर्थंकर सर्वज्ञ सिद्ध होते हैं। यह तो आपकी केवल अविचारसे कल्पना। इतने मात्रसे तीर्थंकरत्व विशेषता कैसे सिद्ध होजाय? क्या आप सर्वज्ञत्व सामान्यको सिद्ध करते हैं या विशिष्ट सर्वज्ञत्वको सिद्ध करते हैं? प्रथम पक्षमें दूसरोंके सर्वज्ञ भी आपको मानने होंगे जिससे आपका सिद्धान्त च्युत होजाता है। विशिष्टकी सिद्धि माननेसे तो आप निगृहीत, क्योंकि अवतक आपने मेरे सामने तीर्थंकरोंको सर्वज्ञ सिद्ध नहीं किया वह तो विवादास्पद है। आपने आत्माका और ज्ञानका समवाय सम्बन्ध कथन किया सो अपने सिद्धान्तसे विरुद्ध कहा ऐसी भूल हमने कभी—

जैन मित्र मण्डलका अष्टम उत्तरपत्र।

१.

आपने कहा है कि हमारा ईश्वर स्वभावसे सर्वज्ञ है, उसमें

क्यों दोष देते हैं। सो क्या यह कोई युक्ति है? कल आपने ही कहा था कि सर्वज्ञको जाननेवाला सर्वज्ञ होता है सो क्या आप बतलावेंगे कि इश्वर (वैदिक) सर्वज्ञको जाननेवाला कौन सर्वज्ञ था? यदि था तब तो आपके ही कथनसे सर्वज्ञ सिद्धि हो गई। यदि नहीं था तो आपका ईश्वर सर्वज्ञ कैसे सिद्ध हो सकता है? इसका कुछ भी उत्तर न देकर स्वभावसे ईश्वरको सर्वज्ञ कहना आपकी उत्तरशैली पर हँसी दिलाता है, कृपा कर उत्तर दीजिये।

आपने फिर भी कुछ ज्ञान बढ़ना ही बहुज्ञताका लक्षण किया है सो कुछ ज्ञानके बढ़नेसे आपका तात्पर्य कितने ज्ञानसे है? क्यों नहीं इसको स्पष्ट करते, व्यर्थको क्यों यह प्रश्न झंझटमें डाल दिया जाता है? ज्ञान बढ़ते२ कहां, क्यों रुक जाता हैं इसमें क्या कारण है? इस बातका उत्तर आप सबसे पहिले दे देवें तो मैं दावेसे कह सकता हूं कि शास्त्रार्थ सर्वज्ञ सिद्धिका अभी समाप्त होता है।

दूसरे यह भी बतला दीजिये कि आप किन २ दर्शनोंको प्रमाण मानते हैं। ऋषभदेवके विषयमें जो आपने लिखा है वह सर्वथा मिथ्या है। क्योंकि हमारे ग्रन्थोंमें ऐसी कथा कहीं नहीं है।

खेद है कि आप हमारे सर्वज्ञसाधक हेतुओंका एक भी खंडन नहीं करते और इधर उधरकी वातोंमें वह जाते हैं। पंडितजी! क्या इसी शैली पर आप शास्त्रार्थ करते हैं!

आपने कहा था कि "तीर्थङ्कराः न सर्वज्ञाः शरीरधारित्वात्" सो मित्रवर! सर्वज्ञ सिद्धिमें शरीरधारित्व हेतु बाधक नहीं हैं किन्तु साधक है। शरीरधारीसे राग द्वेष विशिष्ट शरीरधारी लेते हैं

या वीतराग शरीरधारी लेते हैं या सामान्य लेते हैं। यदि पूर्व पक्ष लेते हैं तब तो सिद्धि साध्यता दोष आता है। यदि द्वितीय पक्ष लेते हैं तो विरुद्ध हेत्वाभास शरीरधारित्व होता है क्योंकि बिना सर्वज्ञके वीतराग शरीरधारित्व हो ही नहीं सक्ता है। यदि तृतीय पक्ष लेते हैं तो शंकित व्यभिचारी होजाता है।

आर्य कुमार सभाका नवम प्रश्नपत्र।

९

अब तक आपने मेरे दिये हुये सर्वज्ञता साधक हेतुमें साध्य वैकल्प दोषका परिहार नहीं किया और तीर्थङ्करोंकी सर्वज्ञताके खंडन करनेवाले मेरे हेतुमें किसी प्रकारका व्यभिचारादि दोष न होनेसे आपका हेतु सत्प्रतिपक्ष भी वैसेका वैसा टिका रहा।

१. ज्ञानावरणीय कर्मको निवृत करनेवाली तपश्चर्याका उपदेश किसने किया जिसके अनुष्ठानसे आप अपने तीर्थंकरोंको सर्वज्ञ बनाते हो, इसका उत्तर नहीं दिया।

२. आत्माका ज्ञान गुण स्वाभाविक है परन्तु ज्ञानावरणीय कर्म स्वाभाविक नहीं इसमें क्या प्रमाण है ? जबकि दोनों शुरु कोई नहीं, अनादि हैं। हमारा शास्त्रार्थ जैन मित्र मंडलसे हो रहा है, दिगम्बर हो श्वेताम्बर हो, हम इसके कोई जिम्मेवार नहीं, पहिले इसका कोई निर्णय नहीं किया। जो कुछ मैंने श्री ऋषभदेवजीके विषयमें कहा वह महा मुनि आत्मारामजी आनन्दविजयजी विरचित निर्णयसागर प्रेससे मुद्रित सं० १८८४ ईस्वीका पृष्ठ ४९७ आदिसे कहा, इसलिये इस विषयमें आपकी घबराहट निकम्मी मालूम होती है।

३. आपकी प्रतिज्ञा मात्रसे तीर्थंकरोंको सर्वज्ञ कैसे माना जाय? जो हेतु दिया था उसका विस्तार पूर्वक खण्डन कर दिया इसलिये बीजांकुर न्यायसे सर्वज्ञता तीर्थंकरोंमें न पाये जानेसे एक सर्वज्ञसे दूसरा, दूसरेसे तीसरा, उससे चौथा इत्यादि अनादित्व कल्पना अन्ध परम्परा नहीं तो क्या है?

४. एक देशी तीर्थंकर एक देशी चैत्रादिकी न्याईं भ्रान्तिमान् भी होसक्ता है, फिर सर्वज्ञ कैसे?

५. जहां आप खड़े होकर शास्त्रार्थ कर रहे हैं इस स्थानपर आपके ईश्वरका सर्वज्ञ अत्यन्ताभाव है या सूर्यादिके प्रकाशकी न्याईं उसका ज्ञान गुण यहां तक फैला हुआ है, प्रथम पक्षमें सर्वज्ञ कैसे? द्वितीय पक्षमें किसी ऐसे एक देशीका दृष्टान्त बतलाए जिसका गुण "अवच्छेद्यावच्छेद" सर्वज्ञ फैलनेवाला हो, अन्यथा साध्य विकलता आपके सिरपर वैसे ही खड़ी है।

६. आपके तीर्थंकर शरीरको छोड़कर भी सर्वज्ञ रहते हैं या नहीं? अन्त्य पक्षमें क्या अल्पज्ञ अज्ञानी हो जाता है या उनके ज्ञान गुणका सर्वथा नाश होजाता हैं, आदि पक्षमें प्रमाण कहें और पहिले दिये दोषोंका परिहार भी करें।

७. आप मानते हैं कि हमारे **तीर्थंकर सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान तथा दयालु होते हैं। यदि ऐसा है और इस समय उनका अत्यन्ताभाव नहीं तो जो पुरुष रातको चोरी करते, वेश्यागामी होते इत्यादि, उनको अपनी दयालुता आदिसे क्यों नहीं हटा देते** जिससे वह भाविष्यमें नरक दुःखका भागी न हो? नहीं देखी

जो आपने सिद्धान्त आप ही काट जाना, हमारा ईश्वर तो स्वभाव-से ही सर्वज्ञ है, उसमें आक्षेप नहीं आता; परन्तु आप तो अपने सर्वज्ञका पहिले पापावरण मानते और तपश्चर्यासे सर्वज्ञ बनाते, उसीमें हमारा प्रश्न है कि ऐसी तपश्चर्या जिससे सर्वज्ञ बढ़ा जाय कैसे प्रमाण मान लेवें? हम शरीरधारीत्वसे परिच्छिन्नत्व ग्रहण करते हैं इसलिये आपके सब आक्षेप निर्मूल हैं। मेरे बहुज्ञत्व लक्षणको न समझकर वृथा कथन कर दिया।

जैन मित्रमंडलका नवम उत्तरपत्र।

४

आत्मारामके ग्रन्थका प्रमाण देकर दोष देना मिथ्या प्रलाप है। कारण कि आपने यह विचार नहीं किया कि शास्त्रार्थ दिगम्बर जैनियोंसे हो रहाहै और प्रमाण देते चले श्वेताम्बरोंका। अच्छा होता वैष्णव वैदिक सम्प्रदायका भी प्रमाण देते। यह आपका केवल अरण्यरोदन हुआ है।

बहुज्ञ आप मुक्त आत्माको मानते हैं और दृष्टान्त मुझसे मांगते हैं ....

आप पहले प्रश्नोंका उत्तर नहीं देते हैं इसीलिये नवीन बात कह देते हैं।

बहुज्ञका लक्षण आपका जो ला इन्तहा न हो और पूर्वा-वस्थासे कुछ बढ़ा हुआ हो, सो कृपानाथ! यहां क्या आप प्रश्नसे बच सकते हैं? बहुज्ञका ज्ञान ला इन्तहा क्यों नहीं हो जाता? क्यों तो वह पूर्वावस्थासे बढ़ा और क्यों ला इन्तहा नहीं हो सका? क्या पब्लिक इस वचन मात्रपर शास्त्रार्थका समय नष्ट न समझेगी?

अच्छा हो कृपाकर इसमें हेतु दें कि वह मुक्तात्माका ज्ञान पूर्वावस्थासे क्यों तो बढ़ा और क्यों ला इन्तहा नहीं हुआ ? यही फैसला सर्वज्ञ-सिद्धिका होता है ।

आपका यह लिखना कि मेरे ईश्वरसे आपको क्या मतलब सो पंडितजी हमें मतलब क्यों नहीं ? मतलब यही है कि आपके कथन और शास्त्रसे ही सर्वज्ञ सिद्ध होता है । आपनें कहा है कि सर्वज्ञको जाननेवाला सर्वज्ञ होता है । बतलाइये कि यह वैदिक ईश्वर सर्वज्ञ है इसको कौन जानता है ? विना इसका उत्तर दिये सर्वज्ञ सिद्धि आपको माननी ही पड़ेगी ।

आपने कहा है कि विना पढ़े कोई कुछ नहीं जान सकता, अन्यथा मैं ही इंग्लिशका प्रोफेसर हो जाऊं। सो महाराज! बालकको स्तन्य पानका उपदेश किसने दिया था ? और मदन मास्टर जो ३ वर्षका है उसे बढ़िया गानेका उपदेश किसने दिया था ? इसी प्रकार एक ३ वर्षके बालकको गणितका उपदेश किसने दिया जिसका लेख सरस्वतीमें आचुका है । खेद है कि आपका क्षयोपशम न हुआ अन्यथा आप इंग्लिशके मास्टर हो ही जाते । इसी प्रकार विशेष क्षयोपशम तीर्थंकरको है इसलिये वे किसीसे उपदेशित नहीं थे ।

सर्वज्ञ परिपाटी अनादि है क्योंकि संसार अनादि है और संसारपूर्वक मोक्ष होती है । इसलिये आपका यह लिखना कि "सर्वज्ञसे सर्वज्ञ यह अन्ध परम्परा नहीं तो क्या" मिथ्या है जैसे अनादिकालीन वेदको पढ़नेवाले आपके यहां नहीं.............. आते हैं। आपका यह लिखना कि एक देशीय ज्ञानवाला तीर्थंकर

भ्रान्तिवाला भी होसक्ता ठीक नहीं क्योंकि ऐसा कहनेसे संसारी मनुष्योंमें कोई सत्यवक्ता ही न ठहर सकेगा। आप भी एक देशीय हैं, आप भी मिथ्या ज्ञानवाले ठहरेंगे इसलिये यह नियम नहीं है। ज्ञानावरण कर्म पर द्रव्य है उसका ह्रास होता है इसलिये वह स्वाभाविक नहीं है। यदि स्वाभाविक होता तो उसका आत्मासे दूरीकरण न होता।

आपने कौन २ दर्शन प्रमाण माने हैं इसका उत्तर क्यों नहीं देते ?

आर्य कुमार सभाका दशम प्रश्नपत्र।

तीर्थंकर भगवान तथा दूसरे जीवोंकी मुक्तिमें विशेषता है या अविशेषता ?

शरीर त्याग उत्तर कालमें सर्वथा मुक्त हुए तीर्थंकर भगवान जिस स्थानको प्राप्त होता है उसका परिमाण बतलावें।

आपके सर्वज्ञ साधक सब अनुमानोंका खण्डन कर दिया जिसका परिहार आपसे आज तक नहीं हुआ, मैं तो ठीक ठीक न्यायशैली अनुसार शास्त्रार्थ कर रहा हूं आप अपनी घबराहटमें आकर कुछका कुछ कह जाते हैं। जो जो शरीरधारी होता है वह नियमसे राग द्वेषसे ही होता है यह नियम ठीक है जैसे कि रथ्या पुरुषमें पाया जाता है, और आपके तीर्थंकर वीतराग हैं इससे स्पष्ट सिद्ध है कि वह पहिले बद्ध होनेसे अल्पज्ञ थे, इसीमें तो मेरा प्रश्न है कि उनकी अल्पज्ञता किसके उपदेशसे तपश्चर्या करके सर्वज्ञ बनें, यह अब तक आपने साबित नहीं किया इसलिये आपके शेष शंकित व्यभिचारि आदि दोष सब कल्पना मात्र हैं।

वैदिक ईश्वरकी सर्वज्ञताके विषयमें कथन किया है इससे आपको मतानुज्ञा नाम निग्रह स्थानमें पतित किया है। मैंने कहा है कि वैदिक ईश्वर स्वभावसे सर्वज्ञ होनेसे आपके आक्षेपका पात्र नहीं पर आप तो अपने सर्वज्ञको तपश्चर्यादि साधन करनेसे बतलाते है उसीमें हमारा प्रश्न है कि उस तपश्चर्यामें क्या प्रमाण है? कि अल्पज्ञ देहधारी परिच्छिन्न आत्माको सर्वज्ञ बना देती है। धन्य आपकी समाधान शैली आपको ही दुर्बल करती है। मैं जीवकी बहुज्ञता, मुक्त अवस्था पर्यन्त मानता हूं परन्तु उस अवस्थामें भी वह मेरे स्वभाव सिद्ध सर्वज्ञ ईश्वरके समान सर्व शक्तिमान् वा सर्वज्ञ नहीं हो सक्ता, क्योंकि परिच्छिन्न मौजूद है जैसा कि लोटाके दृष्टान्तसे मैंने कलके व्याख्यानमें स्पष्ट कर दिया था। मुक्तात्मा न निरतिशय ज्ञानवान् परिच्छिन्नत्वात् यन्नैवं तन्नैवं जो परिच्छिन्न चेतन हो वह मुक्त होने पर भी निरतिशय सर्वज्ञ धर्मविशिष्ट नहीं होसक्ता उसकी निरति सर्वज्ञतामें परिच्छिन्नता ही बाधक है।

बालकको स्तन पान न सिखाने पर भी पूर्व अनादि संस्कारसे प्रवृत्ति निर्बाध है। परन्तु सर्वज्ञता नहीं यह दृष्टान्त विषम होकर आपके पतिकूल पड़ता है। मास्टर मदनका राग सम्बन्धी ज्ञान उसके पूर्व संस्कारोंके भले ही सिद्ध करें अर्थात् पूर्व जन्ममें उसने उस विद्याकी शिक्षा ग्रहण गुरुसे की तब ही तो अल्पायुमें निपुण हो गया पर सर्वज्ञ नहीं। यदि ऐसा न मानो तो आप भी उसकी न्याईं रागमें निपुण क्यों नहीं हो गये?

ज्ञानावरण कर्म आत्माका पर द्रव्य है, इसमें प्रष्टव्य है कि वह परद्रव्यका संबन्ध कबसे हुआ? सादि कहो तो आपके तीर्थंकरोंको

पुनः ज्ञानावरण कर्म आवृत करलेगा। अनादि मानो तो एक स्वाभाविक दूसरा विभाविक। इसमें आपने क्या युक्ति दी है? मैं यही तो वार वार कह रहा हूं कि उस कर्मके आवरणकी निवृत्ति किस साधनसे होती है और साधन प्रमाण क्यों माना जाय, तीर्थंकरोंको न माननेसे संसारमें कोई सत्यवक्ता हो ही नहीं सक्ता। खूब कहा, अपने मुहसे। विना किसी प्रमाण सिद्धिके।

सर्वज्ञ बनाते हो यह शैली आपकी विद्वान् देख लेंगे कि न्यायके साथ कितनी युक्ति प्रतीत होती है।

इसी सत्यतामें तो मेरा प्रश्न है कि वह सर्वज्ञ सिद्ध कर दीजिये जिससे हम उनको सत्य मान सकें। तीर्थंकर सर्वज्ञ सिद्ध होवें तो उनकी सत्य वक्तता आप्तपना सिद्ध होवे और आप्तता सिद्ध हो जाय तो उनकी सर्वज्ञता सिद्ध होवे। इस प्रकार अन्यो-न्याश्रय दोष आपके मतमें प्रबल बना रहता है। इस कालमें मेरे सर्वज्ञता पर प्रश्न वृथा है यह प्रतिज्ञा हानि निग्रह स्थान है।

जैन मित्र मण्डलका दशम उत्तरपत्र।

(सूक्ष्मादि पदार्थाः कस्यचित् प्रत्यक्षाः अनुमेयत्वात्)

जिस प्रकार अग्नि पर्वतमें अनुमेय है वह किसीके प्रत्यक्ष अवश्य है इसी प्रकार सूक्ष्मादि पदार्थ अनुमेय हैं उनका भी कोई प्रत्यक्षकर्त्ता अवश्य है इस अनुमेयत्व हेतुद्वारा सर्वज्ञ सिद्धिमें यातो बाधा दीजिये या हमारे तीर्थंकरको सर्वज्ञ स्वीकार कीजिये। सर्वज्ञ सिद्धिके प्रश्नोंका उत्तर न देकर आपका बार बार कुछका-कुछ कहना केवल समयको नष्ट करना, और १५ मिनटके टर्नको ज्यों त्यों कर पूरा करना, है। पण्डितजी, यदि आप कृपा कर

वह ज्ञानकी कार्यकारणता सिद्ध नहीं करेंगे, और अनुमेयत्व हेतुका खण्डन न करेंगे तथा वैदिक ईश्वरकी सर्वज्ञता सिद्ध न करेंगे तब तक आपको सर्वज्ञ सिद्धि माननी ही पड़ेगी।

जब जीवोंमें ज्ञानकी प्रकर्ष रूपसे वृद्धि और दोष आवरणोंकी हानि पाते हैं तो कहीं पर वह पूर्णतासे हानि हो सक्ती है जैसे अग्निमें तपाये हुये सोनेमेंसे किट्टि कालिमादि दोष दूर होते हुए निश्शेष होजाते हैं जहां पर राग द्वेष और आवरणकी हानि पूर्णतासे है वही हमारा तीर्थंकर सर्वज्ञ है। इस अनुमानमें बाधा दीजिये अन्यथा सर्वज्ञ सिद्धि स्वीकार कीजिये। तीर्थंकर सिद्धिमें जो आप दृष्टान्त मानते हैं सो ठीक नहीं क्योंकि वादमें दृष्टान्त प्रमाण होता है किन्तु अविनाभावी हेतु प्रमाण होता है। अन्यथा आपका वैदिक ईश्वर सर्वज्ञ किस दृष्टान्तसे सिद्ध होता है।

सृष्टिका आदि उपदेष्टा कौन था? ईश्वर तो अशरीर है उसके कण्ठ तात्वादि नहीं हैं इसलिये वह तो उपदेश कर नहीं सक्ता। जो पुरुष व्याख्यान करेगा वह रागादि दोष दूषित अल्पज्ञ होगा इसलिये उसका व्याख्यान अन्यथा (झूंठा) भी हो सक्ता है। तो वैदिक क्रियाओंका मानना अन्ध परम्परा सुतरां सिद्ध है। तीर्थंकर और इतर मुक्तात्मा दोनोंका ज्ञान समान है दोनों ही सर्वज्ञ हैं। तीर्थंकर सर्वज्ञका स्थान कितना बड़ा है इस प्रश्नसे सिद्ध होता है कि आप तीर्थंकरको सर्वज्ञ मान चुके। अवस्थाके विषयमें पूछते हो सो यह विषयान्तर है। आंख तिमिरापहरण होने पर देखनेमें दृष्टान्त है साध्य विकल नहीं, रूप ग्रहण इसका स्वभाव है इसको वारवार कहना पिष्टपेषण है।

जो जो शरीरधारी है वह रागद्वेषी है ऐसा नियम नहीं। यह शंकित व्यभिचारी है क्योंकि योगियोंमें रागद्वेषका अभाव पाया जाता है अन्यथा तपश्चर्या संन्यास व्यर्थ होगा।

हमने जो हेतु दिये थे उनको कथन मात्रसे दूषित कहना दूषित सिद्ध नहीं करता है।

(वैदिक) ईश्वर स्वभावसे सर्वज्ञ है, रहो, परन्तु प्रश्न तो यह है कि आपके कथनानुसार उसका कोई सर्वज्ञ है या नहीं? उत्तर क्यों नहीं देते?

बहुज्ञताके विषयमें आपका कहना कि वह ईश्वरके ज्ञानके बराबर नहीं हो सक्ता। परिच्छिन्न परिमाण होनेसे, क्यों महाशयजी परिच्छिन्न परिमाणत्वहेतु आपका संदिग्ध विपक्ष व्यावृति है परिच्छिन्न परिमाणत्व आपमें भी है फिर आप क्यों नहीं बहुज्ञ हैं? अथवा परिच्छिन्न परिमाणवाला आपके समान मुक्तात्मा भी है फिर वह बहुज्ञ क्यों बन गया? क्या यह व्यभिचार वारण करनेमें आप समर्थ होंगे, और वह बहुज्ञता आपके ईश्वरके ज्ञानके बराबर क्यों नहीं हो जाती? इस विषयमें आपका क्या उत्तर है? मदन मास्टर बालकका दृष्टान्त उपदेशके विषयमें था, अब आप सर्वज्ञके विषयमें कहते हैं। खेद! आप स्व वचन बाधित हो जाते हैं। सोभी महाराज! आप पूर्व संस्कार कारण मानते हैं फिर क्यों नहीं तीर्थंकरमें विशेष क्षयोपशम स्वीकार करते? उन्होंने उपदेश किसीसे नहीं लिया, ज्ञानावरण परद्रव्य है यह कहा गया है इसी लिये वह स्वाभाविक नहीं है।

सर्वज्ञ रागद्वेष रहित हैं इस लिये उनके फिर ज्ञानावरण नहीं आसक्ता है। बन्धका कारण कषाय है, कारणके नष्ट होनेपर बन्धरूप कार्य भी नहीं हो सक्ता है जैसे बीजमें अंकुर जनन सामर्थ्य है परन्तु बीजके जलानेपर वह सामर्थ्य फिर नहीं रहती है, इसी प्रकार सर्वज्ञमें फिर कर्मबन्ध सामर्थ्य भी नहीं है।

अग्निका अनुमान करते समय आपका अनुमान ज्ञान अग्निके पास जाता है या अग्नि ज्ञानके पास आती है? महाशय वर! जैसे ज्ञान वहीं परसे अग्निको जान लेता है वैसे सर्वज्ञ भी वहींसे जान लेता है।

आप बहुज्ञकी सीमा बतलानेमें निरुत्तर होते हैं।

आप किस २ दर्शनको प्रमाण मानते है?

आर्य कुमारसभाका एकादशम प्रश्न पत्र।

और जो आप कहते हैं कि उपदेशकी क्या आवश्यक्ता है? पापाचरणके दूर हो जानेसे सर्वज्ञ हो जाते हैं, आपका यह कथन सर्वथा प्रलाप मात्र है क्योंकि विना उपदेश कौन कैसे यह जान सक्ता है कि मायाचरण अज्ञानका कारण है। क्या जिस न्यायके आप आचार्य हैं, उसमें किसीके पढ़नेके विना ही आप पण्डित बन गये? यदि उपदेश देनेकी आवश्यक्ता नहीं तो फिर आप जैन विद्या मन्दिर क्यों जारी करते तथा अपने श्रावकोंको कथोपदेश क्यों करते हो? और अब अपने पक्षको समाधान करने वास्ते कि हमारे श्रावक गलतीमें न पड़ जावें शास्त्रार्थ क्यों करते हो? जैसे आपके मतमें उपदेशके विना सर्वज्ञ बन जाते हैं, वैसे ही शास्त्रार्थ जो उपदेशकी समता रखता है उसके बिना ही लोग अपने आप सत्यज्ञानी

बन जायंगे। मैं नहीं समझता कि आप शास्त्रार्थमें कैसी भूलीभूली बातें कर रहे हैं। आप कहते हैं कि जो कषाय होते हैं वह तादृश प्रति द्वन्द्वी कर्मसे नाश हो जाते हैं, परन्तु यह बात भी तो बतानेसे ही मालूम होगी। अपने आप कौन जान सक्ता है इसलिये बतावें कि वह कौन था जिसने पहिले उपदेश किया। आप मेरे लेखको उल्टा समझकर या श्रोताओंपर भ्रान्ति फैलानेके लिये बार २ कहते हैं कि "तुमने कहा है सर्वज्ञको सर्वज्ञ ही जानता है" क्या सिंहको सिंह ही जान सक्ता है? इस कथनसे आप 'अविज्ञात श्चा ज्ञानं' इस निग्रह स्थानमें पतित होते है, आप पर मेरे विकल्पका तो यह अभिप्राय था कि "तीर्थंकर सर्वज्ञ हैं इस प्रकार तीर्थंकरोंकी सर्वज्ञाताको स्वयं तीर्थंकरोंने जाना अथवा किसी अन्य अल्पज्ञने सर्वज्ञताको विषय किया है, प्रथम पक्ष यद्यपि सर्वज्ञताकी असिद्धिसे दूषित है, द्वितीय पक्ष अल्पज्ञमें अनाप्तताकी संभावना होने प्रमाण ही नहीं हो सक्ता और आपके दोष पाये जानेके कारण तीर्थंकर सर्वज्ञ सिद्ध नहीं हुये।

मेरे पक्षमें दोष नहीं क्योंकि मैं ईश्वरको स्वाभाविक सर्वज्ञ मानता हूं। उसका वेद रूप उपदेश भी मेरे लिये स्वतः प्रमाण है परन्तु तीर्थंकर तो तपश्चर्यादिसे बने मानते हो उसमें आक्षेप कर चुका हूं कि जिन तपश्चर्यासे वह सर्वज्ञ बनते उसमें प्रमाणता कैसे मानी जाय? पं० जी मेरी ओर ध्यान करें। आपने जो जैन सिद्धान्तसे सर्वथा विरुद्ध ज्ञान गुणका आत्माके साथ समवाय सबन्ध मानकर उसके ज्ञानके बीच कर्मावरण कथन किया यह कथन आपकी न्यायान-भिज्ञताको बोधन करता है। क्या गुण गुणीके बीचमें भी कभी कोई

आवरण देखा गया है ? खांड और उसका मिठास, दूध और उसकी चिकनाहट, आम्रफल और उसकी मधुरता वा खट्टापनके बीचमें भी कोई आवरण देखा या सुना गया। क्या आपने इस समय न्यायसे भी काम लेना छोड़ दिया है ? और दुनिया भरमें कोई एक दृष्टान्त दिखला दें कि गुण तथा गुणीके बीच आवरण हो ? ऐसा दृष्टान्त आपको प्रलयान्त भी प्राप्त नहीं हो सक्ता। जो आप सुवर्णकी किट्टिकाका दृष्टान्त देकर इष्ट सिद्धि करते हैं, उसमें मैंने कईवार कहा कि जिन क्षारादि द्रव्यों द्वारा किट्टिका दूर हो जाती है उप किट्टिकाका स्थानी तपश्चर्यादि साधनोंको सप्रमाण सिद्ध करो कि अमुक आप्त अथवा अनाप्त उपदिष्ट साधन जीवके कषाय विध्वंसक इसमें आपने प्रमाणता सिद्ध नहीं कि अब तक सर्वज्ञ सिद्ध न होनेसे सर्वज्ञोक्त तपश्चर्या साधनकी सिद्धि नहीं और अनाप्तोक्तमें वह प्रमाण नहीं। न्यायकी शैलीका अनुसन्धान करें।

जैन मित्रमंडलका एकादशम उत्तर पत्र।

उपदेशके विना यदि ज्ञान नहीं हो तो बतलाइये कि योगियोंको जो बढ़ा हुआ ज्ञान होता है उसका उपदेश किसने दिया ? आपके मुक्तात्माओंको बहु ज्ञान किसने दिया था ? कलदिन कहा गया था कि मदनको गाना किसने सिखलाया था ? बालकको दूध पिलानेका किसने उपदेश दिया ? आपने उत्तरमें कहा कि संस्कार विशेषसे होता है सो महाराज! क्षयोपशमको ही संस्कार कहते हैं इस लिये जब बालकादिकमें उतना क्षयोपशम विना उपदेशके ही रहता है, तो तीर्थंकरोंमें विशेष क्षयोपशम क्यों नहीं होता, अंध-

वा नवीन आविष्कर्ताओंको बिना उपदेश दिये जैसे वह आविष्कार सूझता है।

दूसरे आपका ईश्वर स्वभाव सिद्धसर्वज्ञ क्यों हो सक्ता है? क्या प्रतिज्ञा मात्रसे कार्य सिद्धि होती है? महाराज, हमारे यहां समवाय संबंध और कथंचित् तादात्म्य सम्बन्ध इनका एक ही अर्थ है इसलिये गुण गुणीमें हमारे यहां कथंचित् भेद है। आपने कहाकि गुण गुणीके बीचमें कोई आ नहीं सक्ता है सो हल्दीके साथ चूना आजानेसे उसकी पीतिमा कैसे नष्ट हो जाती है इसी प्रकार ज्ञाना-वरण पर द्रव्य है, कषाय वश उसका आत्मासे सम्बन्ध हो जानेसे ज्ञानादि गुणमें कमी पड़ती है।

ज्ञान स्वपर प्रकाशक है इस लिये सर्वज्ञ अपनेको भी जानते हैं और उपदेश भी देते हैं, यदि ज्ञान स्वपर प्रकाशक नहीं है तो आपका ईश्वर सर्वज्ञ नहीं बन सक्ता है।

आपने हमारे प्रश्नोंका उत्तर न दिया जो कि सर्वज्ञ सिद्धिमें प्रमाणभूत हैं। आपका सर्वज्ञ किसने जाना? वह सर्वज्ञ है या नहीं? इसका उत्तर दीजिये और भी सर्वज्ञतामें प्रमाण है।

आर्य कुमारसभाका द्वादशम प्रश्नपत्र।

'सूक्ष्मान्तरित दूरार्थाः कस्यचित्प्रत्यक्षा अनुमेयत्वात्'— अग्नि आदिकी न्याई अनुमेय होनेसे सूक्ष्मादि पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं यह अनुमान भी आपके तीर्थंकरोंकी सर्वज्ञताका साधक नहीं क्योंकि इसके साध्यमें 'कस्यचित्' पदके संबंधार्थकी प्रसिद्धि नहीं अप्रसिद्धि है अर्थात् अग्न्यादि दृष्टान्तमें कौनसा अंश साध्य रूपसे लाते हो, आत्मत्व सामान्य माने तो अस्मदादियोंमें

सर्वज्ञतापत्ति और उसका प्रत्यक्षसे बाध स्पष्ट है, इस प्रकारके बाधकी रीतिको गङ्गेशोपाध्याय कृत न्यायचिन्तामणिके बाध-स्थलमें अवलोकन करें। यदि 'कस्यचित्' पद किसी विशेष आत्माकी सर्वज्ञता विवक्षित हो तो वह विशेष कौन हैं अर्हन् सर्वज्ञ भगवान् कहो तो अबतक उसकी सिद्धि नहीं हुई अन्य विशेष (अस्मदादि अभिमत माननेसे) आपको अनिष्टापत्ति होगी तथा साध्य विकलतासे भी आप मुक्त नहीं हुए। जबतक आप साध्य वैकल्यादि वारण न करेंगे। आगे शास्त्रार्थ चलाना शास्त्रार्थ शैलीसे प्रच्युत प्रतीत होता है। आज तो आपको अनुमानसे प्रत्यक्ष पदार्थके साधन करनेकी सूझी परन्तु पहिले शास्त्रार्थमें आप जो दोष देते जिनका वारण भले प्रकार करा दिया गया है। आज आप वैसे ही आक्षेपोंके लक्ष्य बने हुए हैं और आपसे योग्य उत्तर नहीं मिलता, विद्वान् स्वयं निर्णयकर लेंगे इसी लिये लिखित शास्त्रार्थका प्रारम्भ किया गया है। और यह है कि जिस प्रकार द्यणुकादि कार्योंसे परमाणु कारणकी सिद्धि होती है वैसे ही अनुमान सर्वज्ञ तीर्थंकरकी सिद्धि हो सकती है। इसमें वक्तव्य यह है कि अनुमानसे सिद्धि करो परन्तु जो २ आप अपने तीर्थंकरोंकी सर्वज्ञतामें अनुमान देते हैं वह शुद्ध नहीं ठहरता, साध्य वैकल्यादि दोष आते हैं जिनका उत्तर देनेमें आप विकल हो इधर उधरकी अप्राकरणिक बातें कह जाते हैं। और जो आप जीवके बहुज्ञ हो जाने पर भी यह कहते हैं कि आगे और वह अपने ज्ञानको निःसीम क्यों न कर लेगा इसका उत्तर दे चुके हैं कि जिस प्रकार एक परिमित पात्र अपने अवकाशानुसार ही जलादिका आधार

बनता है वैसे ही परिच्छिन्न होनेसे जीवकी ज्ञानशक्ति निरतिशय नहीं हो सकती। आप कोई एक भी दृष्टान्त देवें कि जो चेतन परिच्छिन्न होकर भी निःसीम ज्ञानवाला होवे जिसको देख लिङ्ग लिङ्गी सम्बन्धकी स्पष्टतासे आपके सर्वज्ञोंका अनुमान हो सके। धन्य हो ! न्यायाचार्य होनेपर भी एक सर्वज्ञता सिद्धार्थ एक दृष्टान्त भी न निकाल सके, और जो आप कहते हैं कि जिसकी प्रकृष्यमान हानि होती है उसकी निःशेषता अवश्य पाई जाती है। शनैः राग-द्वेषकी हानि होती आत्माको सर्वज्ञ बना देगी, उसीमें तो मेरा प्रश्न है कि जिन साधनोंसे रागद्वेष हट जाते तथा आपके मान्य तीर्थंकर सर्वज्ञ बन जाते, उन साधनोंमें कैसे प्रामाण्य माना जाय ? क्योंकि अवश्यम्य अनाप्त वाक्य तो प्रमाण हो नहीं सकता और अब तक सर्वज्ञ सिद्ध न होनेसे आपमें कोई आप्त सिद्ध नहीं हुआ. इस बातका ध्यान न देकर, आपने व्यर्थ प्रलाप कर दिया। और जो यह कथन है कि वादमें दृष्टान्त प्रमाण नहीं तो आप अपने सर्वज्ञ साधनके लिये प्रयुक्त सूक्ष्म पदार्थ इत्यादि अनुमानमें अग्न्यादि-वत् दृष्टान्तका क्यों प्रयोग करते ? आप अपने कहेको आप ही काट जाते हैं और विचारें तो सही मेरे साथ किस कथाको प्रमाण कर शास्त्रार्थ कर रहे हैं आपने अपने लेखमें 'तीर्थंकरोंकी सर्वज्ञता सिद्धिके लिये कहते हैं कि 'अथवा वैदिक ईश्वर दृष्टान्त होता है,' पं० जी मैं आपके इस कथन पर बहुत प्रसन्न हुआ हूं कि अब आप वैदिक ईश्वर मान गये जिसका पिछले शास्त्रार्थमें खण्डन कर रहे थे क्योंकि वादी प्रतिवादी स्वीकृत अथवा प्रमाण सम्प्रतिपन्न ही दृष्टान्त होता है। जब इस प्रकार वैदिक ईश्वरका आपने स्वीकार कर

लिया पिछले शास्त्रार्थ (जगत्कर्त्ता खंडन विषयक) आपने सर्वथा तिलाञ्जलि दे दी और अर्थान्तर निग्रहन्त पाती बन गये।

जैनमित्रमण्डलका द्वादशम उत्तर पत्र।

अनुमेयत्व हेतुसे सर्वज्ञ सिद्धिमें जो आक्षेप आप करते हैं उससे सिद्ध होता है कि आप सामान्यतासे सर्वज्ञ स्वीकार करते हैं फिर विशेषमें प्रश्न करते हैं। अस्तु यदि इसी प्रकार विवादाध्यसित-में विकल्प उठाया जाय तो अग्नि विशिष्ट पर्वतका धूम धर्म है या अग्नि रहितका है या अग्नि अनग्नि वालेका या सामान्यका प्रथम पक्षमें दोष आता है, ऐसा कौन अज्ञ है जो अग्निमान पर्वतको मानें और अग्निको न माने, अकिञ्चित्कर दोष आता है। द्वितीय पक्षमें विरुद्ध हेत्वाभास हो जाता है।

कश्चित शब्दसे हम सामन्यतासे सर्वज्ञ सिद्ध करते हैं। फिर विशेष सर्वज्ञ सिद्ध करनेके लिये दूसरा हेतु है; अर्हत् सर्वज्ञः निर्दोषत्वात्।

क्या ज्ञेयके पास ज्ञानको जाना पड़ता है, जो परिच्छिन्नता ज्ञानको रोकती है। यह बात असिद्ध है आत्मासे ज्ञान गुण ज्यादह नहीं जा सकता है।

परिच्छन्नता आपमें भी तो है। आपका फिर गुण क्यों यहीं तक रुका हुआ है और आप जब छोटे थे तब आपकी परिच्छन्नता यहीं तक क्यों थी? और अब कैसे बढ़ गई? और जलके पात्रको दृष्टान्तकी तरह आपके ज्ञान और सम्पूर्ण परिच्छिन्न परिमाणवालोंका ज्ञान कहां तक क्यों बढ़ता है?

पंडितजी ! जब तक रुकावट और वृद्धिका आप कारण नहीं बतलावेंगे तब तक आपको सर्वज्ञता माननी पड़ेगी । संसारमें सभी प्रमेय हैं। जो प्रमेय नहीं वह असत् खर्‌ विषाण वात है । जैसे वैय्याकरण न्यायशास्त्रसे अनभिज्ञ है तो उसे नैय्यायिक जानता है, जो नैय्यायिक इंग्लिशसे अनभिज्ञ है उसे इंग्लिश मास्टर जानता है, संसारमें ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं जो प्रमेय नहीं हो । सारांश यही है जो प्रमेय नहीं है वह कोई चीज नहीं और प्रमेय उसे ही कहते हैं जो किसी न किसीके ज्ञानका विषय हो ।

जिन पदार्थोंको हम अनुमान प्रमाणसे जानते हैं उनका भी कोई साक्षात् करनेवाला अवश्य है, इसी प्रकार जो आगमसे ज्ञान किया जाता है उस आगमका प्रतिपादयिता भी साक्षात् कर्त्ता अवश्य है, अन्यथा आगमनिर्दिष्ट पदार्थोंमें यथार्थता नहीं आ सक्ती है।

आपके वेदसे सम्पूर्ण पदार्थोंका ज्ञान होता है या नहीं; यदि नहीं होता तो वह सम्पूर्ण पदार्थोंका प्रतिपादक नहीं हो सका, जिन पदार्थोंका वह प्रतिपादक नहीं है वे मान्य हैं या नहीं; यदि है तब तो वेदाःप्रमाणम् पद कथन मिथ्या पडता है, यदि मान्य नहीं है तो पदार्थ होते हुए भी उनका अभाव मानना मिथ्या प्रतीति है, यदि वह संपूर्ण पदार्थोंका ज्ञान कराता है तो उसका प्रतिपादयिता तथा श्रोता दोनों ही सर्वज्ञ होने चाहिये। दूसरी बात—वेद आपके पौरुषेय हैं या अपौरुषेय? यदि पौरुषेय हैं तो उसका रचयिता अल्प ज्ञानी और सरागी है या सर्वज्ञ वीतरागी है? यदि अल्प ज्ञानी और सरागी है तब तो उसका बनाया हुआ वेद प्रमाणमें नहीं आसकता,

जिस प्रकार कि अल्प ज्ञानी सरागी पुरुषोंके बनाये हुये नाटकादि- यदि उसका रचयिता सर्वज्ञ और वीतराग है तो जो रचयिता है वही सर्वज्ञ वीतराग क्यों मान्य नहीं है? फिर केवल ईश्वरको सर्वज्ञ कहना मिथ्या ही है। यदि वह ईश्वरकृत है तो बतलाइये कि वेद शब्दमय है या ज्ञानमय? यदि शब्दमय है तो वह ईश्वर कृत नहीं हो सक्ता है, क्योंकि कंठ तालु आदिके विना शब्दकी उत्पत्ति हो नहीं सक्ती है, ईश्वर आपका अशरीर है इस लिये उसके द्वारा शब्दोत्पादन हो नहीं सक्ता है, यदि वेद ज्ञानमय है तो असंभव ही हैं क्योंकि ज्ञान आत्माका धर्म हैं। वह रचा क्या जायगा? इसलिये वेदको ईश्वरकृत कहना ही मिथ्या है, इसलिये किसी पुरुष विशेष कृत ही मानना ठीक है और वह पुरुष राग द्वेष विहीन सर्वज्ञ होना चाहिये। अन्यथा वेदोंको प्रमाणता नहीं आसक्ती है, इस प्रकार आपको उभयतः पाशारज्जु न्यायसे सर्वज्ञ सिद्धि अथवा वेदको अप्रमाणता माननी ही पड़ेगी।

आर्य कुमार सभाका त्रयोदशम प्रश्न पत्र।

प्रमेयकमलमार्तण्ड परिच्छेद चतुर्थ पृष्ठ १८२ पर प्रभाचन्द्राचार्यने बड़े समारोहसे समवाय पदार्थका खण्डन किया है, ग्रन्थ मेरे पास मौजूद है देख लें ' ननु चायुत सिद्धान्त माधार्याधार ' इत्यादि ग्रन्थको न मालूम आप आज क्यों पद पद पर स्खलित होते हैं? मैं कथञ्चित्तादात्म्य सम्बन्ध और समवाय सम्बन्धको जैन न्यायाचार्योंने कहीं भी पर्याय रूपसे नहीं किया बतलावें आपको उनसे बड़ा प्रमाण मानूं? या आपके आचार्योंको आपकी . प्रक्रियामें प्रमाणिक

समझा जावे। विद्वान् लोग पढ़कर देख लेवेंगे। जैन न्यायका मैं पण्डित नहीं था आप कैसे हैं।

पं०जी आप सर्वज्ञताके प्रकरणको छोड़कर वेद पौरुषेय है इत्यादि विषयान्तर संचय करते हैं अर्थान्तर निग्रहके भागी बनते हैं तो भी संक्षेपसे सुनिये, वेद ईश्वरीय होनेसे मैं किसी पुरुष प्रणीत नहीं मानता, शब्दार्थ सम्बन्धावच्छिन्न ईश्वरीय ज्ञान ही वेद है। यदि विशेष परिष्कार सुननेकी इच्छा होतो स्वतंत्र विषय चलाकर विचार करलें। प्रकृति विषयका त्याग न करें। हल्दीके चूना आजानेसे पीतिमाका नाश विषम दृष्टान्त है मैंने तो आपसे पूछा था कि आत्मा गुणी उसका ज्ञान गुण जैसा आपने माना भी है उसके मध्य कोई आवरणका दृष्टान्त बतलावें।

ज्ञानका स्वपर प्रकाश मानकर सर्वज्ञोंको अपनी सर्वज्ञताका ज्ञान तथा उनके उपदेशकी प्रमाणता कथन करते हैं साथ २ कहते जाते हो कि उपदेशकी कोई आवश्यक्ता नहीं और साथ ही कहते हैं कि सर्वज्ञ तिर्थंकर उपदेश भी करते हैं फिर वह किस लिये करते हैं क्यों करते हैं? आपका पूर्वापर विरोध ध्यान करो।

आप जो नवीन आविष्कर्ताओंके दृष्टान्त उपदेश विना ज्ञानकी प्रकर्षता कथन करते सो ठीक नहीं क्योंकि प्रथम किसी विषयमें निपुण हुआ पुरुष विषयान्तरमें संस्कारोंकी प्रबलतासे विशिष्ट ज्ञानको पालेता है। एक ग्रन्थमें निपुणमति कोई पुरुष तद्विषयक ग्रन्थान्तरमें स्वयं कुशल होसक्ता है परन्तु यह नहीं, उसको पहिले किसीका उपदेश कदापि न हुआ हो। ज्ञान ज्ञेयके पास जाता है, या वह ज्ञेय ज्ञानके पास आता है इत्यादि विकल्प कैसे प्रकरण संगत है?

सुनिये, मेरे सिद्धान्तमें तो आत्मामें समवाय सम्बन्धसे और विषयमें विषयता सम्बन्धसे ज्ञान उत्पन्न होता है जिसका क्रम, आत्मा, मनसा संयुज्यते मन इन्द्रियेण इन्द्रियमर्थेन, इत्यादि हमारे आचार्योंने लिखा, पर मैं नहीं समझता कि आप विषय छोड़, किधरर की बातें करते हैं।

जैनमित्र मण्डलका त्रयोदशम उत्तर पत्र

आप थोड़ा पूर्वापर देखिये और समझनेकी चेष्टा कीजिये फिर आप ऐसा न कहेंगे। महाराज! जैन दर्शनकी अपेक्षाको समझ लीजिये, एक जगह समवायको पर दर्शन समझकर खण्डन किया है; दूसरी जगह स्व सिद्धान्तकी दृष्टिसे मण्डन किया है, और वेद पौरुषेय हैं या अपौरुषेय ? यह प्रश्न विषयान्तर नहीं है, जो बात सर्वज्ञ सिद्धिमें साधक है उसे ही आप विषयान्तर कह देते हैं। पंडितजी! ऐसा ही प्रश्न ईश्वरकी सर्वज्ञता पर ही था जिसका उत्तर आप देते ही नहीं।

आपने ऊहापोहसे ज्ञानकी वृद्धि स्वयं स्वीकार कर ली, तीर्थंकर सर्वज्ञ होते हुए उपदेश दे सक्ते हैं वे शरीर विशिष्ट हैं, इसमें कोई बाधा नहीं ? सर्वज्ञ उपदेश देते हैं इससे यह नियम नहीं हो जाता कि विना उपदेशके ज्ञान हो नहीं सक्ता ? आत्मा और ज्ञानावरणमें संयोग सम्बन्ध है। हल्दी चूनेके मिलनेसे जैसे तीसरी दशा हो जाती है वैसे ही आत्माकी तीसरी दशा हो जाती है।

पंडितजी! आप कहते बहुत हैं लिखते बहुत कम हैं क्या यह कमजोरी नहीं है ?

अनुमेयत्व हेतुसे सर्वज्ञ सिद्धिमें जो आप साध्यविकल दोष कहते हैं

यह ठीक नहीं है क्योंकि पर्वतीय वह्नि किसी न किसीके प्रत्यक्ष होती है, इसमें सामान्य प्रत्यक्षत्व साध्यांश है फिर क्यों नहीं सर्वज्ञ सिद्धिमें साधक ही है।

पंडितजी! मुक्तात्माकी शकल वगैरह पूछना प्रकरणान्तर नहीं है? अच्छा हो यदि आप पहिले हमारे सर्वज्ञ साधक अनुमानमें बाधा दें, फिर दूसरी बात छेड़ें तो जल्दी शास्त्रार्थका फलितार्थ बैठी हुई समाजपर विदित हो जाय। आपने बहुज्ञताके प्रश्नको क्यों नहीं स्पष्ट किया? क्या यह सर्वज्ञ सिद्धिमें अनिवार्य हेतु नहीं है? ईश्वर सर्वज्ञका ज्ञान कौनसा सर्वज्ञ करता है। तीसरे अल्पज्ञता स्वाभाविक है तो वह कमीवेशी रूप क्यों होती है?

ज्ञानावरणका बन्ध क्यों नहीं होता है? इस विषयमें दृष्टान्त चांवलके छिलकेका है, चांवल छिलकेसे अलग होनेपर फिर बन्ध विशिष्ट तथा उत्पन्न शक्तिवाला नहीं होता है।

इस विषयका खुलासा करनेपर भी आप बार २ कहते हुए अज्ञान नामक निग्रह स्थान पाती है।

ज्ञानमें अक्स नहीं पड़ता है। ज्ञानज्ञेयका एकदेशमें रहना नियम नहीं है।

आर्य कुमार सभाका चतुर्दशम प्रश्न पत्र।

जीवात्माके ज्ञान वृद्धिके विषयमें और भी सुन लें जैसा कि एक एक रुपया अपनी वृद्धिमें चौंसठ पैसों तक बढ़ता क्योंकि रुपयेके पैसे ६४ ही हो सकते हैं और पैसे तक ही काम होता दीखता है। तीसरे अनन्त लामादूद रुपयेके पैसे नहीं हो सकते और नाहीं पैसेसे बढ़ता हुआ चौसठ पैसेकी संख्यासे अधिक बढ़

सक्ता है वैसे ही हमारे सिद्धान्तमें जीवका ज्ञान मुक्तावस्था तक बढ़ सक्ता है और अधम योनियों तक घट सक्ता है। परिच्छिन्न होनेसे उसका ज्ञान सर्वथा निःसीम नहीं माना जा। सक्ता अभिप्राय यह है कि अस्मत् भावनासे जीवात्माका ज्ञान परमात्माकी सहायता पाता हुआ मुक्ति पर्यन्त बढ़ सक्ता है जैसा कि पुरुष दूसरेकी सहायता पाकर अपनी शक्तिसे अधिक काम कर सकते है। जितना जिसके अन्दर सम्भावित हो परन्तु सीमाको उल्लंघन करके कोई पुरुप किसी बोझको उठा नहीं सक्ता जीवात्माकी ज्ञान वृद्धिके विषयमें जानिये। आपने अबतक एक दृष्टान्त नहीं बतलाया जो परिच्छिन्न होकर भी अनन्त ज्ञानवाला हो सके अतः दृष्टान्त सिद्धि आपके मतमें बनी रही और जो आप सर्वज्ञ परिपाटीको कहते वह अन्ध परंपरासे दूषित जानिये। पंडितजी जरा विचार तो कीजिये जब तक आप तीर्थंकरोंकी सर्वज्ञताका स्वरूप सिद्ध ही न कर सकें पुनः उनकी परिपाटीको अनादि कथन करना निर्धनका अपने आपको लक्षपति कथनके समान प्रतीत होता है और जो ज्ञानावरण कर्मको परद्रव्य मानकर अपना पल्ला छुड़ानेका मार्ग निकाला सो हमारी पूर्वकी कोटि बनी रहनेसे बाल मनोमोहन मात्र है क्योंकि आपने ज्ञानावरण कर्ममें होनेवाले आक्षेपका समाधान नहीं किया, और उसकी बाधक तपश्चर्याकी प्रमाणता भी सिद्ध नहीं की गई। और जो तारतम्य हैं वह कहीं सीमा तक जाता है इसलिये जीवात्माके ज्ञानके तारतम्यकी जहाँ समाप्ति हो वह सर्वज्ञ तीर्थंकर हैं यह कथन आपका अब तक प्रतिज्ञा मात्र ही बना रहा। यों तो हम भी कह दें कि हमारा स्वभाव सिद्ध ईश्वर ही सर्वज्ञ मान लेना

चाहिये, कई जन्मजन्मान्तरोंके बन्धनमें पड़े हुए तीर्थंकरोंके आत्माको कैसे सर्वज्ञ मान सकें जब कि वह एकदेशी जीव हैं। और जो नवीन विज्ञानका आविष्कार करते हैं वह भी निःसीम नहीं ऐसे कथन तीर्थंकरकी सर्वज्ञ सिद्धिमें अरण्यरोदन समान है तिरनुयो-ज्यानुयोग पर्यनुयोग आप पर ही घटित है। पढ़नेवाले तत्वदर्शी जान लेंगे यही दशा प्रतिज्ञा हानि कथनकी जानो। और जो स्वसर्वज्ञकी सिद्धि किये बिना मेरे सर्वज्ञ पर विकल्प करते हैं कि आपका ईश्वर सर्वज्ञ है या नहीं इत्यादि यह आपकी अनभिज्ञता बोधन करता है क्योंकि मेरे दिये दोषोंका परिहार किये बिना ऐसा आक्षेप करनेसे मतानुज्ञाके अन्तः पाती हो शरीर धारित्व हेतुके सब दोषोंका वारण कर दिया जाय। आप पिष्टपेषण करते और इधर उधरकी बातोंसे लेखको बढ़ा देनेसे ही पांडित्य नहीं होता और दिये हेत्वाभास साध्य विकल आदिका आपने कोई उद्धार नहीं किया। आप अपने तीर्थंकरोंको जिस प्रकार सर्वज्ञ मानते हैं मैं उसमें दोष दे रहा हूँ और प्रमेयकमलमार्तण्डादिके दिये अनुमानका भले प्रकार खण्डन किया। अब आप कोई नई युक्ति निकालें जिससे तिर्थंकर सर्वज्ञ सिद्ध हो सकें। पिष्टपेषणसे काम न चलेगा। सर्वज्ञका जाननेवाला सर्वज्ञ होता है ऐसा लिखकर मेरी पंक्तिका उलटा अर्थ समझते हैं। मेरे विकल्पोंको सूक्ष्म दृष्टिसे देखो और पंक्तिस्पष्ट किये अभिप्रायको समझो। केवल उत्तर-शैलीपर हास्य आता है इतना लिखकर ही कृत २ न हो सकेगा। आपने जो मुझे लक्ष्य करके कथन किया है कि आपका ज्ञान भी बचपनकी अपेक्षा बढ़ गया है, नहीं तो आप प्रोफ़ेसर

कैसे बन जाते, इसका उत्तर यह है ज्ञान बड़े पर मेरा ज्ञान भी कोई अनन्त नहीं अनेक पदार्थ हैं कि जिनको मैं नहीं जानता क्योंकि मैं परिच्छिन्न हूँ इस कथनसे आपको ही अनिष्टापत्ति है इतने मात्रसे आपके तीर्थंकरोंकी सर्वज्ञता सिद्ध नहीं बल्कि इससे तो उलटी अल्पज्ञता सिद्ध हो गई क्योंकि अनन्त तीर्थंकर भी मेरी तरह परिच्छिन्न ही थे। न्यूटनादि आविष्कर्त्ताओंके दृष्टान्तसे भी आपकी इष्टसिद्धि नहीं। उत्तर लिख चुका हूँ कि परिच्छिन्न होनेसे उनका ज्ञान मादूद है लामादूद नहीं। बहुज्ञताके विषयमें उत्तर लिख दिया गया ध्यानसे पढ़ा करें। मैंने तो पूछा है कि तीर्थंकरोंको ज्ञानका रवाकी न्याई सर्वत्र फैलाव होता है या सब पदार्थोंका उनके स्वरूपमें अक्स पड़ता है। परिच्छिन्नका अपरिच्छिन्न फैलावमें दृष्टान्त कहें। यदि सब पदार्थोंका अक्स उनके सरूपमें मानो तो छोटे दर्पण सदृश तीर्थंकरके स्वरूपमें अनन्त पदार्थका प्रतिबिम्ब कैसे ?

जैन मित्रमण्डलका चतुर्दशम उत्तर पत्र।

पहले आपने यह भी कहा था कि सर्वज्ञ है और सर्व शक्तिमान् है वह नरकमें जाते हुएको बचा क्यों नहीं लेता ? पंडितजी ! यह दोष आपके यहां ही आता है। आपका ईश्वर ही अज्ञो जन्तु रती शोय—मात्मनः सुख दुःखयोः ईश्वर प्रेरितो गच्छेत् स्वर्गम्वा श्वभ्रमेव वा, इस कथनसे नरक भेजनेवाला सिद्ध होता है। आपका ईश्वर ही कर्तृताके कारण अनर्थोंका रचयिता सिद्ध होता है।

हमारे तीर्थंकर सर्वज्ञ वीतराग हैं इसलिये यह दोष लागू नहीं। यदि उपदेशके बिना ज्ञान ही नहीं हो तो बतलाइये इसको

नीरक्षीरका विवेक कौन सिखलाता है। इस लिये संस्कार पूर्व-भवका तीव्र होनेसे विना उपदेशके भी ज्ञान स्वयम् हो जाता है।

जिनका संस्कार मन्द है उन्हें ही उपदेशकी आवश्यकता है। अल्पज्ञतामें जो तारतम्य पाया जाता है उसका दृष्टान्त दीजिये और बहुज्ञता आगे क्यों नहीं जाती? पंडितजी! रुपयेका दृष्टान्त तो आपने हास्यकारक ही कहा है। क्या रुपयेके सोलह और ६४ टुकड़ेकी कल्पनाकी तरह क्या अधिक कल्पना नहीं होसक्ती है? यह कल्पना मात्र है, कितनी ही करलो इस कल्पना रूप दृष्टान्तसे क्या विना हेतुके बहुज्ञता परिमाण सिद्ध होगया?

आपका हेतु न देना और दिनसे गोलमाल ही करते जाना क्या सिद्ध करता है? पंडितजी! शरीरधारित्व हेतुके विषयमें फल कहा गया था कि यह हेतु शंकित विपक्षवृत्ति है या शरीर धारित्व भी रहे और सर्वज्ञ भी हो इसमें क्या बाधा है? और आप शरीरधारित्वसे रागादि विशिष्ट लेते हैं या विरुद्ध लेते हैं या सामान्य? रागादि रहित लेते हैं तो विरुद्धहेत्वाभास है। विना सर्वज्ञके राग रहित शरीरधारित्व हो ही नहीं सक्ता।

राग सहित लेते हैं तो सिद्ध साध्यता दोष आता है और सामान्य लेते हो तो व्यभिचारी? पंडितजी, शरीरधारीत्व हेतु जीवोंमें समान होनेपर भी तरतम भेद कैसा? हम कहते हैं ईश्वर असर्वज्ञ जीवत्वात् अस्मादादिवत् इससे ईश्वर भी सर्वज्ञ नहीं सिद्ध होता। अन्यथा दृष्टान्त दीजिये। आप सर्वज्ञाभाव एक देशमें और एक कालमें करते हैं या सर्वत्र सर्वकालमें? यदि एक काल एक देश

करते हैं तो अन्यत्र अन्य कालमें सर्वज्ञाभाव सिद्ध नहीं हो सक्ता ? सर्वत्र सर्वदा करते हैं तो निषेध कर्ता ही सर्वज्ञ बन जाते हैं।

इसी प्रकार प्रत्यक्षसे सर्वज्ञभाव सिद्ध नहीं हो सक्ता, क्योंकि इन्द्रिय प्रत्यक्ष अल्प देशीय है, अतीन्द्रिय आपके यहां असिद्ध ही है। अनुमान प्रमाण उल्टा साधक ही है।

तथाहि

तीर्थंकराः सर्वज्ञाः सर्वथा निर्दोषत्वात्—जो सर्वज्ञ नहीं होता वह सर्वथा निर्दोष भी नहीं होता जैसा रथ्या पुरुष। दूसरा अनुमान सर्वज्ञ सिद्धिमें "तीर्थंकराः सर्वज्ञाः तद्ग्रहण स्वभावत्वे सति प्रक्षीण प्रतिबन्ध पत्ययत्वात्" यदि आप सर्व उपमान पुरुषोंका ज्ञान करलें तो उसका निषेध कर सक्ते हैं अन्यथा नहीं। और ज्ञान करनेपर सर्वज्ञता अनिवार्य हो जाती है अभाव प्रमाण तो हो ही नहीं सक्ता। गृहीत्वा वस्तु सद्भाव स्मृत्वा च प्रतियोगिनं मानसं नास्तिता ज्ञानं जानतेऽक्षानपेक्षया।

आर्यकुमार सभाका पंचमदशम प्रश्नपत्र।

ज्ञानावरणका आत्माके साथ संयोग सम्बन्ध है वह संयोग अज है वा किसीसे जन्य है ? आद्य पक्षमें उसके निवृत्त होनेमें कोई युक्ति नहीं। अन्त पक्षमें जिस कारणसे वह संयोग आत्मासे उत्पन्न हुआ, फिर मोक्षमें भी उसी कारणसे ज्ञानावरणका संयोग हो जानेमें क्या बाधा ? हल्दी चूनेके मिलानेसे जैसे तीसरी दशा हो जाती है वैसे कौनसी वस्तु आपके जीवात्मामें मिलाई गई; जिसके मिलनेसे तीर्थंकर सर्वज्ञ बन गये ? कई बार पूछा उत्तर नहीं आया। अच्छा पंडितजी ! तीर्थंकरोंकी सर्वज्ञता सम्बन्धी एक दो

चातें और पूंछता हूं ; शरीरधारित्व कालमें तीर्थंकर उपदेश करते हुए, जमीनके साथ स्पर्श करते हैं या नहीं ? यदि नहीं करते तो कितने ऊंचे रहते हैं ? और करते हैं तो साधारण मनुष्योंसे क्या विशेषता ? आपने कहा था कि महापुराणमें श्री ऋषभदेवजीकी कथा आई है उन्होंने ग्रहस्थावस्था सो निकाल कर सुना दें, मेरा संतोष हो जावे । विद्वानोंका काम हठ करना नहीं ।

पंडितजी ! रुपये पैसेके दृष्टान्तमें जो आपने कहा उसे सुन कर मुझे भी हँसी आती है, क्या रुपयेके पैसे चौसठसे अधिक भी हो सकते हैं ? क्या कहते हो ? ध्यान करें ।

" अज्ञो जन्तुरनीशोऽयम् " इत्यादि जो आपने पाठ पढ़ा है वह किस स्थानका है ? मैं तो कर्मानुसार ईश्वरीय सृष्टिमें व्यवस्था मानता हूं । भला मैं भी पूछता हूं—कि आपके सर्वज्ञ जब उपदेश करते हैं तो इच्छाके बिना करते हैं या निरिच्छ हुए करते हैं ? यदि निरिच्छ कहें तो दृष्टांत कैसा, इच्छासे कहो तो क्या उनमें पुनः रागादि दोष बने रहनेसे अल्पज्ञता रही । हंसके नीरक्षीर सर्प नकुल आदिके विषयमें उत्तर सुनें । जीवके पिछले संस्कारोंसे तत्तत् शरीरमें प्रवृत्ति होती हैं इतने मात्रसे क्या हंसादिकी चेष्टा लामादूद है ? क्या हंस किसी स्वभावसे अन्य शक्तिमें भी बढ़कर अनन्त शक्ति हो गया था ? नकुल सर्प छोड़कर क्या सिंहको भी मार सक्ता है ? ईश्वरः असर्वज्ञः जीवत्वात् इस अनुमानसे यही बात निकली । " वृद्धिमिच्छतो मूलहानिर्न्यायः "

---

१ महापुराण खोलकर उसी समय दिखा दिया गया था ।

(जैनमित्रमण्डल)

आप अपने ईश्वर तीर्थंकर भगवान्‌को सर्वज्ञ सिद्ध करते २ अल्पज्ञ बनागए हो, धन्यवाद करता हूं कि मेरी इष्ट सिद्धि हो गई। वाह ! मेरे भारको आपने संभाल लिया। मित्रोंका यही काम है। यदि पक्षमें मेरे ईश्वरका ग्रहण करोतो जीवत्वहेतु स्वरूपासिद्ध है। क्योंकि **मेरा ईश्वर जीव नहीं। आप ही अपने ईश्वरको जीव मानते हैं।**

जैनमित्रमंडलका पंचदशम उत्तरपत्र।

सर्वज्ञ सिद्धिके विषयमें जो अनुमान माला दी गई है, आपने उसको छुआ तक नहीं और बहुज्ञताका कुछ भी निराकरण नहीं किया।

जब जीवोंमें ज्ञानकी प्रकर्ष वृद्धि है तब क्यों नहीं वह सर्वज्ञता तक जाती, इससे सामान्य सर्वज्ञ सिद्धि माननी पड़ती। अब विशेष तीर्थंकरमें सर्वज्ञता सिद्ध की जाती है " तीर्थंकराः सर्वज्ञाः निर्दोषत्वात् रागादयोः दोषाः तदभावः अर्हत् परमेष्टिनि " तथा च वे निर्दोष हैं युक्तिसे अविरुद्ध वाणी होनेसे वे अविरुद्ध वक्ता हैं। संसार मोक्ष व्यवस्थान्यथानुपपन्न होनेसे वे संसार मोक्ष व्यवस्था युक्तिसे अविरुद्ध सिद्ध है इसलिये तीर्थंकर निर्दोष होनेसे सर्वज्ञ हैं यह बात इतर व्यवच्छेदसे सिद्ध हो जाती है।

नीरक्षीर विवेक दृष्टान्त उपदेशके बिना भी ज्ञान होता है इस विषयमें था न कि बहुज्ञतामें फिर आपने स्वयं खुशी भी मनाली और स्वयं समाधान स्वीकारता भी समझली। धन्य है आपकी समझ पर !

ज्ञानावरण कर्मका जीवके साथ अनादि सम्बन्ध है। व्यक्तिकी अपेक्षासे वह सादि है और प्रवाहकी अपेक्षासे अनादि है।

अनादि होनेपर भी उसका अन्त होता है। जबतक कषाय रहती है तबतक ज्ञानावरण कर्मका बन्ध होता है और कषायके नष्ट होनेपर बन्ध नहीं होता। जैसे बीजमें अंकुर उत्पादन शक्ति है परंतु बीजके जलानेपर वह सम्बन्ध नष्ट होजाता है।

पंडितजी! तीर्थंकरमें सर्वज्ञता विशेषतासे सिद्ध करते है न की जीवत्वसे, आप परमात्माको जीव नहीं मानते हे क्या? क्या वह अजीव हैं?

तीर्थंकर सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रके परम प्रकर्षसे सर्वज्ञ होगये हैं उनका परम प्रकर्ष प्रतिपक्ष क्षयसे होजाता है। रुपयेका दृष्टान्त फिर भी आप नहीं समझे पंडितजी वह कल्पित भेद ऐसा ही है जैसे समानाकार नोटमें १०) २५) ५०) १००)की कल्पना की जाती है! पंडितजी पहले तो दृष्टान्तसे सिद्धि नहीं होती फिर दृष्टान्त भी आप स्वयं नहीं समझे और देडाला, बहुज्ञता और अल्पज्ञतामें कारण बतलाईये। प्रमेयकमलमार्तण्डके १९२ वें पत्रसे लेकर १९९ वें पत्रतक देखिये।

आर्य कुमार सभाका षोडशम प्रश्नपत्र।

आपने प्रमे० कम०के समवाय सम्बन्धमें उत्तर नहीं दिया, मुक्तावस्थामें तीर्थंकर जीवोंका कोई परिमाण नहीं बतलाया कि कितने लम्बे चौड़े हैं।

सर्व शक्तिमान तीर्थंकर भगवानका इस स्थानमें अत्यन्ताभाव है या भाव है। प्रथम पक्षसे वह व्यापक न रहनेसे असर्वज्ञ द्वितीय पक्षमें वह इस शास्त्रार्थमें उनका खण्डन करनेवाले मुझको क्यों नहीं रोकते? मेरे ईश्वर यह दोष नहीं क्योंकि हम कर्मानुष्ठानमें

जीवोंको स्वतंत्र तथा फल भोगनेमें परतंत्र मानते हैं। आप ऐसा मानेंगे तो अपसिद्धान्तकी आपत्ति होगी। महापुराणके विषयमें आपने अवतक कोई पाठ निकाल कर नहीं सुनाया जिससे मेरा श्री रिषभदेवजीके विषयमें सन्तोष होजाता और तीर्थंकरोंके आत्माको परिणमन स्वभाववाला मानते हैं तो अनुमान हो सक्ता है कि जैन तीर्थंकरा अनित्याः भावितुमर्हन्ति परिणामित्वात् घटादिवत् घटपट आदि पदार्थोंकी न्याईं परिणामी होनेसे जैन तीर्थंकर अनित्य हैं इस प्रकार सर्वज्ञताका साधन करना तो दूर रहा। आपने 'ईश्वरः असर्वज्ञः' इस अनुमानसे आपने ईश्वरको जीवत्व हेतुसे स्वयं असर्वज्ञ करा दिया मेरे पक्षकी सिद्धि होगई। मेरे किसी अनुमानका जो तीर्थंकरोंकी असर्वज्ञतामें दिये कोई उत्तर नहीं दिया। जो समवायके स्वीकारमें आपने प्रभाचन्द्रका मत कथन किया वह उस पृष्ठमें सर्वथा नहीं, कोई पंक्ति स्पष्ट पढ़कर सुना दें जिससे प्रतीति हो, कि समवाय स्वीकार है या मुझे कहो मैं समवायके खण्डनका ग्रन्थ सुनाता हूं।

मेरे किसी प्रश्नका उत्तर न आनेसे सिद्ध हुआ कि जैन तीर्थंकर सर्वज्ञ नहीं विद्वान् लोग पाठ करके स्वयं निर्णय कर लेंगे।

जैनमित्रमण्डलका षोडशम उत्तरपत्र।

'सर्वज्ञ सिद्धिके विषयमें आपका यह कहना कि विना सर्वज्ञके कोई सर्वज्ञको जान नहीं हो सक्ता है सो आपका वैदिक ईश्वर सर्वज्ञ है या नहीं? यदि है तो उसे कौनसा दूसरा सर्वज्ञ जानता है वही सर्वज्ञ हो गया। यदि नहीं है तो वह ईश्वर अल्पज्ञ अवश्य हैं। इसका कुछ उत्तर नहीं दिया गया।

मुक्तात्माकी बहुज्ञता क्यों नहीं आगे बढ़ती? जीवोंमें अल्पज्ञता जब स्वाभाविक है तब तारतम्य कैसा पाया जाता है । इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया गया। सर्वज्ञका निषेध आप सर्वत्र सर्वदा कैसे करते हैं?

हमारे अनुमेयत्व हेतुमें आप एक भी दोष न दे सके इसी प्रकार प्रक्षीण प्रतिबन्ध प्रत्ययत्व हेतुका आप कुछ भी खण्डन नहीं कर सके इसलिये सर्वज्ञ सिद्धि अनिवार्य है ।

अब हम आपके ही प्रमाणभूत शास्त्र द्वारा सर्वज्ञ सिद्धि बतलाते हैं ।

ये ग्रन्थ ऋग्वेद भूमिकाके कथनानुसार आपको प्रमाण है । क्या अब भी आपको सर्वज्ञ सिद्धि मान्य नहीं है? यदि नहीं है तो आप अपने ही शास्त्रोंको अप्रमाणभूत ठहराते हैं। उक्त कथनोंसे सामान्य सर्वज्ञ सिद्धि आप मान चुके, इसलिये निर्दोषत्व हेतुसे तीर्थंकर ही सर्वज्ञ सिद्ध होते हैं। और उनमें निर्दोषता युक्ति शास्त्रसे अविरुद्ध वचनों द्वारा आती है ।

अविरुद्धता उनके वचनों द्वारा कही हुई मोक्ष संसार व्यवस्थाके ठीक होनेसे सिद्ध होजाती है ।

योगार्य भाष्य १ अध्याय ४७ सूत्र.

निर्विचार वैश्यारद्येऽध्यात्म प्रसाद:

अर्थात् निर्विचार समाधिकी निर्मलतासे सब पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान होता है ।

भाष्यकारका कथन ।

प्रज्ञा प्रसादमारुह्य, शोच्यः शोचतो जनान् ।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः, सर्वान् प्राज्ञो तु पश्यति ॥

जैसे पर्वतपर स्थित हुआ पुरुष सब पदार्थोंको देखता है वैसे ही शोकसे रहित योगी प्रज्ञा प्रसादको प्राप्त होकर सब पदार्थोंको देख सक्ता है।

रजो गुण तमो गुण यदि मुक्तात्मासे अलग हो जाते हैं तो बतलाइये जीवात्माके कबसे लगे ?

योगी सर्वज्ञ प्रतिपादक आपका आगम इस प्रकार है। यह आगम आपके ऋग्वेद भाष्य भूमिकामें प्रमाण ग्रन्थोंमें लिखा गया है। ऋग्वेद भाष्य भूमिका आपको प्रमाणभूत ही है।

परिणाम त्रयसंयमात् अतीतानागत ज्ञानाम् सूत्र१६वां पाद दृश प्रवृत्या लोक न्यासात् सूक्ष्म व्यवहित विप्र कृष्ट ज्ञानम् ॥

सूत्र २४ वां पाठ ३ रा। और भी—

भुवन ज्ञानं सूर्यं संयमात् सूर्य ब्रह्मका यथार्थ बोध हो जानेसे त्रिलोकीका अपरोक्ष ज्ञान हो जाता है।

सूत्र २५ वां पाठ ३ रा।

तीर्थंकर ज़मीनपर चलते हैं या नहीं इत्यादि कथन आपका सिद्ध करता है कि आप प्रकरण गत सर्वज्ञ सिद्धिको मान चुके हैं। इस विषयान्तरका उत्तर अभी देना आपकी कोटिमें आना है।

शरीर धारित्व हेतुका विवेचन पहले अच्छी तरह किया जा चुका है। तीर्थंकर क्यों नहीं मुझे खंडनसे रोकते यह कथन भी आपके ईश्वर परदोषाव्यापक होता है। जीव कथंचित् नित्य और अनित्य भी है। द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा नित्य है क्योंकि सभी अवस्थाओंमें जीव जाता है और पर्याय नयसे अनित्य है परिणाम स्वभाव वस्तु है। समवाय नित्यैकान्तका खंडन और तादात्म्य

रूपका खंडन आपको प्रमेयकमलमार्तंडमें कहा गया है और प्रमेयरत्नमालामें १०४ पेजमें देखिये ।

विद्वानोंके सुभीतेके लिये।

ईश्वरके कर्तृत्वमें जैनियोंकी ओरसे निम्न लिखित प्रश्न किये गये हैं, पाठक गण देख लें उनके उत्तर कहांतक दिये गये हैं ?

१–प्रथम सम्पूर्ण जगत्में कार्यत्व ही असिद्ध है क्योंकि सूर्य, चन्द्र, सुमेरू आदि पदार्थोंका कभी अभाव ही न था, इनका पहले अभाव सिद्ध हो जाय, तब उनमें कार्यत्व हेतु द्वारा ईश्वरकृत कर्तृता सिद्ध हो सकती है इसलिये पहले प्रागभाव प्रतियोगित्व रूप कार्यत्व इनमें सिद्ध कीजिये ?

२–कार्यकी चेतन कर्ताके साथ व्याप्ति नहीं है किन्तु कारणके साथ है, जैसे जलकी मेघके साथ, वनाग्निकी बासोंके साथ; इनमें चेतनकर्तृता किस तरह आती है ?

बिना कर्ताके बनी हुई वस्तुएं प्रत्यक्ष दृष्टिगत होती है जैसे नर्मदाके गोल पत्थर, ओले, बिजली, पहाड़ोंकी भिन्न२ रूपमें रचना, आदि इनमें चेतनकर्ता सिद्ध करो ?

३–उन्हीं परोक्ष पदार्थोंकी सत्ता स्वीकार की जाती है जो किसी प्रमाणसे सिद्ध हों। पिता पुत्रका जन्य जनक सम्बन्ध होनेसे परोक्ष पिताकी सत्ता माननी ही पड़ती है किन्तु स्वयंसिद्ध घास मेघादिका कर्ता ईश्वर कैसे प्रमाण सिद्ध है ?

४–जो अनुमेय होता है वह किसीके प्रत्यक्ष अवश्य होता है यदि ईश्वरकर्ता अनुमेय है तो वह किसके प्रत्यक्ष है ?

५—जिस कुम्हारका दृष्टांत देकर ईश्वरमें कर्तापन सिद्ध किया जाता है वह सशरीर अल्पज्ञ है, आप (समाज) का साध्य अशरीर सर्वज्ञ है इसलिये कार्यत्व हेतु सशरीर अल्पज्ञ कर्ताको ही सिद्ध करेगा अतः विरुद्ध हेत्वाभास ग्रस्त है और दृष्टांत भी साध्य रहित है क्योंकि यहांपर विशेष कर्ताके साथ व्याप्ति है इसका क्या उत्तर है ?

६—कार्यत्व हेतु सत्प्रतिपक्ष भी है। ईश्वर जगत्कर्ता नहीं हो सक्ता है शरीर रहित होनेसे, क्योंकि बिना शरीरके प्रयत्न होना असंभव है, क्या बिना शरीरके क्रिया हो सक्ती है ?

७—ईश्वर व्यापक और निष्क्रिय है इसलिये हलन चलन क्रियाके बिना कर्ता कैसे ?

८—ईश्वरकी इच्छा एक है या अनेक ? यदि एक है तो सदा एकसे ही कार्य होने चाहिये फिर विरुद्ध नाना कार्य क्यों देखे जाते हैं ? यदि अनेक हैं तो एक समयमें अनेक इच्छाओंका होना कैसे संभव है ?

९—ईश्वरेच्छा स्वाभाविक है या वैभाविक ?

१०—ईश्वरका सृष्टि रचनेका स्वभाव है या उसे नाश करने-का, विरुद्ध दो स्वभाव एक समयमें कैसे ? यदि क्रमसे होते हैं तो संसारमें कहीं उत्पत्ति कहीं विनाश कैसे ?

११—जब कि माता पितासे मनुष्य होते हैं यह न्याय सि-द्धान्त है तब प्रलयके पीछे मनुष्य कैसे उत्पन्न हुए थे ?

१२—प्रलयमें जीव सकर्मा थे या निष्कर्मा, यदि निष्कर्मा थे तो मुक्तोंके समान हुए फिर ईश्वरने सृष्टि किसके लिये रची ?

यदि सत्कर्म थे और ईश्वर भी है ही फिर प्रलयकालमें ही सृष्टि रूप कार्य क्यों नहीं हुआ ?

१३–यदि विना चेतनके शकल नहीं आती है तो बतलाइये कि परमाणु और ईश्वरमें शकल है या नहीं ? यदि है तो उसका कर्त्ता भी चेतन सिद्ध होगा फिर जीव प्रकृति ईश्वर ये तीन पदार्थ नित्य कैसे ? और यदि इनमें शकल रहित हुए भी चेतन कर्त्ता न माना जाय तो आपके कथनानुसार ही अनैकान्तिक दोष आता है। यदि परमाणुमें शकल नहीं है तो द्वयणुकादि कार्योंमें शकल कहांसे आई ?

१४–सृष्टि रचते समय ईश्वर परमाणुओंको कार्यमें लानेके लिये स्वयं योजना करता है या परमाणुओंको आज्ञा देता है कि वे कार्यरूप होजाय। यदि स्वयं योजना करता है तो शरीरकी आवश्यकता पड़ेगी, और अचेतन परमाणुओंसे आज्ञानुसार कार्य लेना भी असंभव है फिर सृष्टि कैसे रची गई ?

१५–मनुष्योंके बनानेके लिये आपके कथनानुसार ईश्वर सांचे बनाता है तो बतलाइये उसने मनुष्योंके ही पहले सांचे तयार किये थे उन्हींसे पशु आदिकी रचना की थी अथवा भिन्न २ सांचे तयार किये थे ?

सांचे बनानेके लिये भी तो अनेक उपकरणोंकी आवश्यकता है वे कहांसे आये ? यदि विना उपकरण–सामग्रीके ही ईश्वरने सांचे ढाले थे तो सांचोंकी क्या जरूरत थी साक्षात् ही सृष्टि क्यों न बना दी ?

ईश्वरके यहां ब्लाक जमा रहते हैं या नवीन २ उसे बनाने

पड़ते हैं ? और ईश्वर पहले सांचे तयार करता है फिर सृष्टि बनाता है यह कथन आपके किस ग्रन्थमें है ?

१६–यदि ईश्वर स्वयं कर्म फल देता है तो एक पशुका जब कोई बधिक वध करता है तो वह दोषी और धर्मात्माओं द्वारा नीच क्यों बनाया जाता है क्योंकि पशुको तो ईश्वरने कर्मफल दिलाया है वही दोषी ठहरना चाहिये ?

१७–यदि वह दयालु है तो दरिद्र, रोगी, बहरे, गूंगे पुरुष क्यों बनाये ?

१८–यदि ईश्वर सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ है तो वेश्या, वधिक, चोर आदि अनर्थकारी क्यों बनाये, वह तो पहले ही से जानता था कि ये अनर्थ करेंगे, वह शक्तिमान् है इसलिये अब भी क्यों नहीं रोकता है ?

नोट–इन प्रश्नोंका समीचीन उत्तर आर्य समाजके अन्यान्य विद्वान भी दे सकें तो हम उन्हें भी शास्त्रार्थ कोटिमें मान्य समझेंगे ।

जैनमित्रमण्डल ।

× × × ×

तीर्थंकरोंकी सर्वज्ञतामें जैनियोंकी ओरसे निम्नलिखित प्रमाण दिये गये हैं । पाठकगण ! इनपर भी विचार करें और देखें कि उनका खण्डन कैसा किया है ?

१–जिस प्रकार अन्धकारके दूर हो जानेपर चक्षु रूपको साक्षात् कर्ता है उसी प्रकार जिस आत्मासे ज्ञानको रोकनेवाले आवरण–कर्म हट गये हैं वह आत्मा भी सकल पदार्थोंका साक्षात कर्ता है ऐसा तीर्थंकर–सर्वज्ञ है ।

२—सम्पूर्ण जीवोंमें ज्ञानकी कमी वेशी पाई जाती है। पशुओंके ज्ञानसे मनुष्योंका ज्ञान बढ़ा हुआ है। मनुष्योंमें भी उत्तरोत्तर बढ़ा हुआ प्रत्यक्ष प्रतीत होता है, योगियोंमें और भी अधिक ज्ञान बढ़ जाता है इससे सिद्ध होता है उस ज्ञानको रोकनेवाला कोई आवरण अवश्य है। जिस जीवके जितना२ वह आवरण हट जाता है उस जीवके उतना २ ही ज्ञान प्रगट हो जाता है, इस प्रकार आवरणकी कमी होते २ किसी आत्मामें पूर्णतासे आवरण हट जाता है वही आत्मा सर्वदृष्टा है।

३—जिस प्रकार सोनेको अग्निमें देनेसे उसमेंसे कालिमादि दोष धीरे २ निकलते हुए सब निकल जाते हैं फिर सोना शुद्ध हो जाता है उसी प्रकार आत्मासे रागद्वेष (क्रोधमानादि) धीरे २ कम होते हुए मनुष्योंमें दीखते हैं, ध्यानी योगियोंमें बहुत कम रागद्वेष रह जाता है, कम होते २ कहींपर सम्पूर्णतासे नष्ट हो जाते हैं। जिस आत्मामें सर्वथा रागद्वेष नहीं है वही आत्मा सर्वज्ञ है।

४—रागद्वेष और आवरण आत्माके नहीं है किन्तु कर्मोंके निमित्तसे हुए हैं इसलिये वे दूर किये जा सक्ते हैं।

५—जो अनुमेय होता है उसका किसीको प्रत्यक्ष अवश्य होता है, सूक्ष्म-परमाणु आदि पदार्थ हमारे अनुमेय हैं इसलिये वे किसीके प्रत्यक्ष भी अवश्य है। जिसके प्रत्यक्ष हैं वही सर्वज्ञ-तीर्थंकर है।

६—शरीरधारित्व और परिच्छिन्न परिमाणत्व हेतु सर्वज्ञके निषेधमें व्यभिचारी हैं। जिस प्रकार मैत्रके चार काले पुत्रोंको देख कर उसके गर्भस्थ पुत्रको भी मैत्र पुत्रत्व हेतु द्वारा काला सिद्ध

करना व्यभिचारी है क्योंकि मैत्र पुत्रत्व रहते हुए भी सफेद पुत्र हो सक्ता है इसी प्रकार शरीरधारित्व और परिच्छिन्न परिमाणत्व रहते हुए भी सर्वज्ञ हो सक्ता है। यदि शरीरधारित्व और परिच्छिन्न परिमाणत्व ज्ञानकी वृद्धिमें बाधक हो तो योगियोंमें और मुक्तात्मा-ओं तक ज्ञानकी वृद्धि क्यों होती है ?

७—जीवोंका ज्ञान कम बढ़ क्यों होता है इसका आपके मतसे क्या उत्तर है ? यदि ज्ञानको रोकनेवाला कोई कारण नहीं है तो ज्ञानकी कमी वृद्धिका भी नियम नहीं हो सक्ता है फिर ज्ञान बढ़कर सर्वज्ञ तक क्यों नहीं जाता ?

यदि रोकनेवाला कारण है तो वह किसी आत्मामें सम्पूर्णता-से दूर क्यों नहीं हो सक्ता है ?

८—आप (आर्य समाज) के मतमें वैदिक मुक्तात्माओंका ज्ञान बढ़ंतर बहुज्ञ हो जाता है, हम पूँछते हैं कि मुक्तात्माओंका ज्ञान बहुज्ञ तक क्यों बढ़ा ? और आगे उसे कौन रोकता है : वह ज्ञान सर्वज्ञ (लामादूद) क्यों नहीं होता :

९—यदि सर्वज्ञको जाननेवाला सर्वज्ञ ही हो तो आपका वैदिक ईश्वर किस सर्वज्ञने जाना है। यदि जाना है तो सर्वज्ञ सिद्धि अनिवार है, यदि नहीं जाना है तो आपके कथनानुसार ही आपका ईश्वर अल्पज्ञ सिद्ध होता है।

१०—सर्वज्ञका निषेध प्रत्यक्षसे नहीं हो सकता है, क्योंकि इन्द्रिय जन्य ज्ञान सर्व देश सर्व कालका निषेधक हो नहीं सकता है, अतिन्द्रिय अभी सिद्ध नहीं है।

११—बिना उपदेशके भी तीर्थंकरमें पहले क्षयोपशमसे ज्ञान

रह जाता है, जैसे मदन मास्टरको ३ वर्षकी अवस्थामें गायनका किसने उपदेश दिया था ? आप भी पहले संस्कारको कारण मानते ही हैं।

१२—वैदिक ईश्वरसे अतिरिक्त योगी भी सर्वज्ञ होते हैं इस विषयमें आपके वेदोंके प्रमाण भी दिये जा चुके हैं जो कि आपके प्रमाणभूत हैं।

१३—जो सर्वथा निर्दोष होता है वही सर्वज्ञ हो सक्ता है ऐसे तीर्थंकर ही हो सक्ते हैं,

१४—आत्मामें रागद्वेष कषायोंसे कर्मबन्ध होता है कर्मोंसे नवीन रागद्वेष होते हैं उनसे फिर कर्मबन्ध होता है। यह सन्तति बीज वृक्षकी तरह चलती है, परन्तु जिस प्रकार बीजको अग्निमें भून दिया जाता है फिर उस बीजमें अंकुर जनन सामर्थ्य नहीं रहती है उसी प्रकार जिस आत्मासे एक बार रागद्वेष सर्वथा दूर हो जाते हैं फिर उस आत्मामें कर्मबन्ध कभी नहीं हो सक्ते हैं। कारणके अभावमें कार्य भी नहीं हो सक्ता है। इस लिये सर्वज्ञ तीर्थंकर फिर कर्मबन्ध नहीं करते हैं, सदा वीतराग सर्वज्ञ अलौकिक सुखमय रहते हैं। जैनमित्रमण्डल।

आर्यसमाजकी ओरसे छपे हुए शास्त्रार्थकी भूमिका।

हमारा शास्त्रार्थ प्रायः छप ही चुका था इसी अवसरमें हमें आर्य कुमार सभाकी ओरसे छपा हुआ शास्त्रार्थ भी मिल गया,

शास्त्रार्थके आदिमें जो भूमिका है उसीसे पाठक शास्त्रार्थके विजय पक्षका परिमाण और समाजी महोदयोंके बुद्धि कौशलका परिज्ञान स्वयं करेंगे ही। हमें उस विषयमें अधिक वक्तव्य नहीं है केवल एक बात कहना है—वह यह है कि हमारे पं० जी (पं० मक्खन-लालजी न्यायालंकार) ने यह कहाथा कि यह नियम नहीं है कि जो २ शरीरधारी होता है वह सर्वज्ञ होता ही नहीं, सर्वज्ञके निषेधमें शरीरधारीत्व हेतु शंकित व्यभिचारी है जैसे श्याम मैत्र पुत्रोंको देखकर कोई गर्भस्थ बालकमें भी मैत्र पुत्रत्व हेतुसे श्यामता सिद्ध करें तो वहां मैत्र पुत्रत्व हेतु व्यभिचारी है। क्योंकि मैत्र पुत्र रहते हुए भी गर्भस्थ बालक गोरा भी होसक्ता है। इसी प्रकार शरीरधारित्व रहते हुए भी सर्वज्ञ हो सक्ता है अन्यथा ज्ञानकी योगियोंमें वृद्धि क्यों होती जाती है? यदि यह कहाजाय कि हमलोग शरीरधारी हैं परन्तु सर्वज्ञ नहीं हैं इसी प्रकार कोई भी शरीरधारी सर्वज्ञ नहीं हो सक्ता, तो विपक्षमें ऐसा भी कहा जा सक्ता है कि जैसे हम लोग जीव (आत्मा) हैं परन्तु सर्वज्ञ नहीं इसी प्रकार वैदिक ईश्वर भी जीव है, वह भी सर्वज्ञ नहीं हो सक्ता "न्यायालंकार" जीने जीवत्व हेतुको शंकित व्यभिचारी स्वयं कहा है, परन्तु इस बातको पं० नृसिंहदेवजी ही स्वयं भी नहीं समझे और अपनी समझका परिचय देनेके लिये स्वयं भूमिकामें वही बात रखदी, इतना ही नहीं किन्तु उस शंकित व्यभिचारी हेतुको सद्धेतु समझकर आपने उस दोषको हटाते हुए अपने ईश्वरको जड़ भी बना डाला। आप भूमिकामें लिखते हैं कि **"हम ईश्वरको जीव मानते कब हैं जो आप जीवत्व हेतुसे असर्वज्ञ**

सिद्ध करते हैं। आप पहले हमारे ईश्वरमें जीवपना भी तो सिद्ध कीजिये।" कैसी समझ और कैसा उत्तर है? पहले तो हमारे पं० जीका आशय ही नहीं समझे और उत्तर देते हुए ईश्वरको जड़ बना डाला। क्यों महात्माजी! जब ईश्वर आत्मा ही नहीं तो उसमें सर्वज्ञ आदि गुण कैसे? ज्ञान गुण तो जीवका ही धर्म है निर्जीव प्रकृतिका तो नहीं है। आपके शास्त्रकारोंने भी तो आत्माके ही जीवात्मा परमात्मा ऐसे दो भेद किये हैं। आप तो परपक्ष खण्डन करते समय अपने सिद्धान्तोंका भी खण्डन कर गये, धन्य है आपकी गहरी समझ पर! पाठको! शास्त्रार्थमें समाजके पं. जीने ऐसी बातें कहीं हैं जो स्वयं वे समाजियोंसे ही हास्यभाजन बने हैं जैसे—उन्होंने कहा है कि "यदि तीर्थंकर सर्वज्ञ है तो क्यों नहीं चोरी आदि अनर्थोंको रोकता है, यह दोष तो वैदिक ईश्वरको कर्ता माननेवालों पर ही जाता है।" तीर्थंकर तो वीतराग हैं इस लिये इस दोषका वहां तो अवकाश ही नहीं है। समाजी ही दयालु कर्ता मानते हैं। उन्होंने अपने मुखसे ईश्वर पर इस दोषको स्वीकार किया है। ऐसा २ बातोंपर ही उपस्थित पब्लिक हंस पड़ती थी और समाजके पं. जी स्वयं हरबार कहते थे कि "मैं बोलता हूं तो पब्लिक हंस पडती है और जैन पं. जी बोलते हैं तब शान्त होकर सुनती है।"

जैनमित्रमण्डल।

वंदे जिनवरम् ।

जैनमित्रमण्डलके नियम ।

मुख्योद्देश्य—परस्पर प्रेम बढ़ाना, गायन मंडली स्थापित करना, कुरीतियोंका वर्जन सुरीतियोंका प्रचार करना तथा व्याख्यानों समाचारपत्रों और ट्रेक्टोंद्वारा सद्धर्म (जैनधर्म) का प्रचार करना और विद्याप्रचारके लिए लायब्रेरी व नाइटस्कूल, शरीररक्षाके लिए व्यायामशाला व परोपकारार्थ औषधालय स्थापित करना इस सभाके मुख्योद्देश्य होंगे ।

(१) इस संस्थाका नाम जैनमित्रमंडल होगा ।

(२) यह सभा नियमित साप्ताहिक हुवा करेगी, जिसमें निम्न लिखित पदाधिकारी चुने जायंगे—सभापति, उपसभापति, मंत्री, उपमंत्री, कोषाध्यक्ष, उपकोषाध्यक्ष होंगे ।

(३) सभाका उचित प्रबन्ध करनेके लिए एक कार्यकारिणी कमेटी होगी जिसका कोरम २१ से अधिक न होगा, जिसमें ६ पदाधिकारी और शेष साधारण सभासद होंगे, और तृतीयांश सभासद होनेपर कार्य प्रारंभ किया जाया करेगा ।

(४) सभाका प्रत्येक कार्य बहु सम्मतिसे हुवा करेगा । सभापतिकी सम्मति संख्यामें दोके बराबर समझी जायगी ।

(५) इस सभाके सभासद दो प्रकारके होवेंगे—एक स्थायी दूसरे साधारण ।

क—स्थायी सभासद वे होवेंगे जो एक मुश्त १०१) रुपये प्रदान करें तथा जन्म पर्यंत सभासद रहें ।

ख–साधारण सभासद वे होवेंगे जो कमसे कम ।)
माहवार दे सकेंगे ।

(६) इसके सभासदोंको बालविवाह, वृद्धविवाह, वेश्यानृत्य आदिमें सम्मिलित न होना होगा । और सम व्यसनका त्यागी ही सभासद हो सकेगा ।

(७) इसके सभासदोंको प्रत्येक सभासदके सुख दुःख आदि प्रत्येक कार्योंमें सम्मिलित होना होगा ।

(८) इस सभाके सभासद कुचरित्री तथा किसी विशेष अव-गुणमें प्रसिद्ध सभासद न हो सकेंगे, लेकिन सभामें आ सकेंगे बशर्ते कि वे नियमकी पाबंदी करें ।

(९) इस सभाके सभासद १५ वर्षसे कम अवस्थावाले न हो सकेंगे ।

(१०) इसके सभासद ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, और स्पर्शशूद्र हो सकेंगे ।

(११) सभासद सभासदीका प्रवेशपत्र भरनेसे तथा एक मासकी पेशगी फीस भरनेसे तथा कार्यकारिणी कमेटीसे स्वीकार-पत्र भेजनेसे समझे जांयगे ।

(१२) सभाके पदाधिकारी व कमेटी मेम्बरका चुनाव वर्षांतपर हुवा करेगा, लेकिन विशेष कारण होनेपर बीचमें भी बदले जा सकते हैं ।

सभाके पदाधिकारी व सभासदोंके कर्त्तव्य ।

सभापति–जलसोंमे उपस्थित होना, सभाके उद्देश्योंका प्रचार तथा सभाके प्रत्येक कार्यकी जांच करना, सभाके जरूरी कार्यमें १५) रु० बिना कमेटीकी आज्ञाके व्यय कर सकता है ।

उपसभापति—सभापतिकी अनुपस्थितिमे सभापतिका कार्य व उपस्थितिमें सहायता करना ।

मंत्री—पत्र व्यवहार करना, समस्त रजिस्टरोंकी पूर्त्ति करना, जल्सोंकी सूचना देना, जो प्रस्ताव कमेटीमें पेश करना हो उसपर सभासदोंकी सम्मति लेनी, पास हो जानेपर हस्ताक्षर कराना और सभाके जरूरी कार्य १०) रुपये विना कमेटीके व्यय कर सकेगा ।

उपमंत्री—मंत्रीकी अनुपस्थितिमें कार्य करना और उपस्थितिमें सहायता पहुंचाना ।

कोषाध्यक्ष—सभाकी आमद व्ययका हिसाब रखना और कमेटीमें माहवारी हिसाब सुनाना तथा सभासदोंसे फीस वसूल करना और रसीद देना होना होगा ।

उपकोषाध्यक्ष—अनुपस्थितिमें कार्य करना, उपस्थितिमें सहायता पहुंचाना ।

सभासद—शेष सभासदोंका कर्त्तव्य है कि नियत समयपर अवश्य पधारें, सभाके उन्नतिके उपाय निरन्तर करते रहना तथा अपनी स्वतंत्र सम्मति प्रगट करना तथा वे नियम कार्य होनेपर सभापति मंत्रीको सूचित करना । यदि सभापति व मंत्री उचित प्रबन्ध न करें तो शीघ्र कमेटीको सूचना दें ।

कार्यकारिणी कमेटीके नियम ।

(१) इस कमेटीके सभासद वो ही हो सकेंगे जो सभामें बहु सम्मतिसे चुने जायंगे ।

(२) कमेटीके नियत समयपर कमेटीके सभासदोंको अवश्य

आना होगा, किन्तु विशेष कार्य होनेपर चिट्ठीद्वारा अपनी सम्मति प्रगट करनी होगी।

(३) सभाका प्रत्येक कार्य कमेटीमें पास हो जानेपर हुवा करेगा, किन्तु विशेष कार्यको सभापति व मंत्री अपनी सम्मतिसे भी कर सकते हैं।

(४) कमेटीमें पास हुवे प्रस्तावोंपर कमेटीके सर्व सभासदोंको हस्ताक्षर करने होंगे।

(५) कमेटी प्रति मासकी पहली तारीखको हुवा करेगी, परन्तु विशेष कार्य होनेपर बीचमें भी हो सकेगी, जिसकी इत्तला सर्व सभासदोंको मंत्री किया करे और कारण लिखना होगा।

(६) कमेटीमें विना इत्तला जो सभासद बराबर ४ कमेटीमें न आवेंगे वो कमेटीसे पृथक् समझे जांयगे।

(७) जो सभासद नियमोंका उल्लंघन करेंगे वे कमेटीकी आज्ञानुसार सभासदीसे पृथक् कर दिये जायंगे।

(८) और सभाके १५० सभासद होनेपर अखबार निकाला जायगा जो सभासदोंको वे मूल्य मिला करेगा।

(९) कमेटीकी आज्ञानुसार वे फीस भी सभासद हो सकेंगे।

नोट—सभासे निकले हुवे ट्रेक्ट वगैरह सभासदोंको वे मूल्य दिये जाया करेंगे।

इन नियमोंमें परिवर्त्तन करना कमेटीके अधिकारमें होगा।

मुद्रक—
मूलचंद किसनदास कापडिया, "जैनविजय" प्रिन्टिंग प्रेस,
खपाटिया चकला–सूरत.

प्रकाशक—
बाबू बिरखूमल जैन, उपमंत्री, जैनमित्रमंडल,
धरमपुरा–देहली.